हिन्दी-साहित्य

सूर संदर्भ

आठ आना

सरस्वती-सिरीज़

रिका

..., बाबू संपूर्णानन्द, ...नाथ भट्ट, व्यौहार राजेन्द्रसिंह, ...नेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित नेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश-प्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्र-नाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश वर्मा, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारा-यण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्या-सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'; डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

हिन्दी-साहित्य

'सूर'-संदर्भ

महाकवि सूरदास जी के सर्वोत्कृष्ट पदों का सविवेचन संकलन।

नन्ददुलारे वाजपेयी, एम० ए०

यदि आप अभी तक इस सिरीज़ के ग्राहक नहीं बने हैं तो ग्राहक बनने में शीघ्रता कीजिए। या पुस्तक के पृष्ठभाग पर दी हुई सूची में से अपनी पसंद की पुस्तकें चुनकर अपने स्थानीय पुस्तक-एजेंट से लीजिए।

सरस्वती-सिरीज़ नं० ९

सूर संदर्भ

नन्ददुलारे वाजपेयी, एम० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस लिमिटेड

प्रयाग

प्राक्कथन

सूरसागर के चुने हुए गीतों का यह संग्रह पाठकों के हाथ में है। इसके गुण-दोषों का विचार वे ही कर सकते हैं। मेरी इच्छा थी कि इस संग्रह के भूमिका-भाग में सूरदास जी की जीवनी, शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं, सूरसागर की भाषा और काव्यगत विशेषताओं आदि के सम्बन्ध में कुछ लिखूँ; पर स्थानाभाव के कारण वह इच्छा स्थगित रखनी पड़ी। केवल 'सूरसागर' काव्य पर एक धारावाही दृष्टि डालने और इस संग्रह के सम्बन्ध में कतिपयआवश्यक उल्लेख कर देने भर से ही संतोष करना पड़ा। यह कार्य भी बड़ी क्षिप्रगति से किया गया है। इसमें प्रकट किये गये विचारों को पाठक मेरे निजी विचार समझें। इनमें किसी शास्त्रीय या धार्मिक विषय की चर्चा नहीं की गई है। इनमें तो काव्य के कलात्मक और भावात्मक विकास पर ही कुछ निवेदन किया गया है। जहाँ अव्यभिचारिणी भक्ति है वहाँ तो शंका है ही नहीं। वहाँ तो सूरदास जी का प्रत्येक पद (अथवा अधिकांश) भगवत्साक्षात्कार का सहायक है। उस दृष्टि से तो 'सूरसागर' काव्य की समीक्षा करने की धृष्टता की ही नहीं जा सकती। बरन् उस अवस्था में तो इसे काव्य कहना भी असंगत होगा। प्रस्तुत लेखक इतनी ऊँची भावना-भूमि पर नहीं है इसी लिए उसे इस काव्य पर टीका-टिप्पणी करने का साहस हो सका है। किन्तु इतना वह अपनी ओर से अवश्य कहेगा कि काव्य के प्रति सम्मान के भाव से प्ररित होकर और उसके रहस्य को समझने की चेष्टा में ही यह साहस किया गया है। इसलिए, आशा है, उसके बिचारों को पढ़कर पाठकों के हृदय में भी सम्मान और जिज्ञासा की भावना ही उत्पन्न होगी और बढ़ेगी। प्रस्तुत संग्रह से यदि इस उद्देश्य की किसी अंश तक पूर्ति हो जाय तो लेखक के लिए यह बहुत बड़ा सौभाग्य होगा। उसका लक्ष्य इसी दिशा में नवीन प्रेरणा उत्पन्न करने का है।

पदों के नीचे प्रत्येक पृष्ठ पर जो शब्दार्थ अथवा वाक्यार्थ दिये गये हैं, आशा है उनसे पदों का अध्ययन करने में पाठकों को सुविधा होगी।

यह संग्रह

इस संग्रह के सम्बन्ध में हम कुछ आरम्भिक शब्द कहते हैं। सूरसागर के प्रायः छः हज़ार पदों में से हमें केवल पाँच सौ के लगभग पद लेने थे; यह कार्य ऊपरी दृष्टि से बड़ा सरल मालूम पड़ता है, किन्तु वास्तव में यह सरल कार्य नहीं था। मूल वस्तु जितनी ही बड़ी होती है उसमें से छोटे अंश छाँटने का काम उतना ही विवेकसाध्य हो जाता है क्योंकि छाँटनेवाले को यह तो ध्यान रखना ही पड़ता है कि जो वस्तु छाँटकर निकाली जाय वह मूलवस्तु का अधिक से अधिक सुन्दर और प्रतिनिधि अंश हो। इसलिए जितनी ही बड़ी वह मूलरचना होगी और उसमें से जितना ही छोटा अंश संग्रह करना होगा, उतने ही अनुपात में संग्रहकार की जिम्मेदारी बढ़ जायगी और उसका कार्य कठिन हो जायगा। फिर सूरसागर केवल मुक्तक गीतों का फुटकल संग्रह नहीं है जिसमें एक पद्य का दूसरे से कोई सम्बन्ध न हो। उस अवस्था में अपने इच्छानुसार पद्यों को छाँट लेने में यह सुविधा रहती है कि पूर्वापर प्रसंग अथवा पद्यों की क्रमबद्धता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सूरसागर जहाँ एक ओर गीतिबद्ध काव्य है वहाँ दूसरी ओर वह आख्यानात्मक भी है। उसमें भागवत की सभी मुख्य कथायें सम्मिलित हैं। हमने उन सब कथाओं को सूरदास के काव्य के लिए गौण समझकर छोड़ दिया है किन्तु सूरसागर के दशम स्कंध की (जो स्कंध समस्त ग्रंथ का तीन-चौथाई से अधिक भाग है) कृष्णलीला के क्रम को यथासम्भव निबाहना आवश्यक समझा है। लीला या कथा का क्रम टूट जाने पर पाठकों का शिकायत करना स्वाभाविक है। सूरसागर के अधिकांश प्रचलित संग्रहों में यह क्रमभंग देख पड़ता है। हमने क्रम की रक्षा करने का पूर्ण प्रयास किया है, इसलिए पाठकों को कथा का आस्वाद भी मिल सकेगा। किन्तु ऐसा करने में हमारी कठिनाई और भी बढ़ गई है। हमें सुन्दर-से-सुन्दर पद्य भी छाँटने थे और कथा-रक्षा का भी ध्यान रखना था। इस कारण सूर-

सागर में वर्णित कृष्ण के बालचरित्र के अधिकांश आख्यान तो हमने रख लिये हैं और उनमें कथा-सूत्र को भी टूटने से बचाया है, पर कुछ अल्प आवश्यक आख्यान हमें छोड़ भी देने पड़े हैं। ये अधिकतर राक्षसों के वध, कालीय-दमन, दावानल-पान आदि के रौद्र अथवा अद्भुत आख्यान थे जिनमें काव्य-सौन्दर्य विशेष परिस्फुट नहीं हो पाया। कृष्ण-चरित्र में उनका कोई प्रमुख स्थान है यह मैं नहीं मानता, किन्तु यह मेरा व्यक्तिगत विचार है। इस संग्रह में उन्हें न रख सकने का कारण काव्य-सम्बन्धी मेरी माप के साथ-साथ स्थानाभाव भी है।

जब आख्यानों को रखना हमने निर्धारित कर लिया तब उनको अधूरा रखना अथवा बीच में कहीं खंडित कर देना ठीक न होता। इसलिए आख्यान पूरे के पूरे रक्खे गये हैं। अवश्य उनका मूल का-सा विस्तार यहाँ नहीं किया गया, चुने हुए पद्य ही एक-एक प्रसंग के रक्खे हैं। ये चुने हुए पद्य ऐसे हैं जिन्हें काव्योत्कर्ष की दृष्टि से छाँटा गया है किन्तु जो प्रसंगगत: कथा-सूत्र की भी रक्षा करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य और कथा की रमणीयता दोनों को अक्षुण्ण रखने का उद्देश्य लेकर किये गये इस संग्रह में एक त्रुटि का रह जाना अवश्यम्भावी था। वह त्रुटि है कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् गोपियों के विरह और भ्रमरगीत-सम्बन्धी अत्यन्त मनोरम पदों का अधिक संख्या में न चुना जा सकना। इन दोनों प्रसंगों के यदि सभी सुन्दर गीत छाँटे जायँ तो उनके लिए कम-से-कम उतनी ही बड़ी एक पुस्तक की आवश्यकता होगी जितना बड़ा हमारा यह संग्रह है (उनका काव्य-सौन्दर्य भी इस संग्रह की अपेक्षा कम न होगा)। आशा है पाठक इस सम्बन्ध की हमारी असमर्थता को समझ लेंगे और उपर्युक्त दोनों प्रसंगों के जो थोड़े से पद इस संग्रह में दिये गये हैं, सम्प्रति उन्हीं से सन्तोष करेंगे। निकटभविष्य में सूरसागर के इन दोनों प्रसंगों का ही एक अलग संग्रह प्रकाशित करने का हमारा विचार है। इस सम्बन्ध में हम अपने पाठकों की इच्छा भी जानना चाहेंगे।

सूरसागर श्रृङ्गाररसप्रधान काव्य-ग्रंथ है। अत: उसमें स्वभावतः कतिपय ऐसे वर्णन आगये हैं जो विद्यार्थियों के उपयुक्त नहीं हैं। उन

अंगों को इस संग्रह में स्थान नहीं दिया गया है। इसे सबके उपयोग की वस्तु बनाना हमारा उद्देश्य रहा है।

अब, इस संग्रह की भाषा, छन्द और लिपि-प्रणाली के सम्बन्ध में भी हम कुछ कहेंगे। किन्तु पाठक यह न समझें कि यहाँ हम सूरदास की भाषा और छन्द-रचना आदि के सम्बन्ध में कोई विस्तृत विचार प्रकट करने जा रहे हैं (उसके लिए तो लम्बी जगह चाहिए)। यहाँ संक्षेप में केवल वे थोड़ी बातें कहनी हैं जिनकी इस संग्रह के लिए अत्यधिक आवश्यकता है और जिनकी पाठकों को जिज्ञासा भी होगी। पाठकों में से कुछ को यह विदित होगा कि सूरसागर का सबसे प्रामाणिक संस्करण नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा सम्पादित कराया गया है। उसका सम्पादन एक दर्जन से अधिक हस्तलिखित प्राचीन मूल्यवान् प्रतियों के आधार पर किया गया है। आरम्भ में यह कार्य स्व० जगन्नाथदास रत्नाकर जी ने अपने हाथों किया था किन्तु उनके देहावसान के पश्चात् यह कार्य सभा को सौंप दिया गया। सभा ने हस्तलिखित प्रतियों और प्राप्त सामग्री के आधार पर यह कार्य नये सिरे से चलाया और सम्पादन का भार मुझे दिया। सम्पादन का कार्य कई वर्ष पूर्व समाप्त हो जाने पर भी, खेद है, सभा अब तक उसे पूरा प्रकाशित नहीं कर सकी है।

अस्तु, उस सम्पादन-कार्य के अपने अनुभवों का लाभ मैंने इस संग्रह में भी उठाया है और भाषा, छन्द और लिपि-सम्बन्धी उन नियमों का यहाँ भी पालन करने की चेष्टा की है जिनका पालन सभा के उक्त संस्करण में किया गया है। उस संस्करण की इस सम्बन्ध की कुछ नवीनताओं को लेकर हिन्दी-संसार में एक हलकी-सी हलचल भी उठी थी किन्तु उसका कोई सुव्यवस्थित रूप नहीं दिखाई दिया। इसलिए उस समय मैंने अपनी ओर से कुछ भी लिखना अनावश्यक समझा था। अब, जब यह संग्रह निकल रहा है, और उन नवीनताओं को इसमें स्थान दिया गया है तब उनके सम्बन्ध में कुछ वक्तव्य आवश्यक हो गया है। यहाँ मैं केवल उन विशेष अंशों को लूँगा जिनके सम्बन्ध में अधिक मतभेद रहा है। यहाँ किसी विवाद में पड़ना अथवा भाषाविज्ञान की उलझनें उत्पन्न करना मेरा लक्ष्य नहीं है। उसके लिए यह उपयुक्त स्थल भी

नहीं। यहाँ तो केवल कुछ निर्देश पाठकों की सुविधा के लिए कर देना ही प्रयोजन है।

दो सबसे बड़ी नवीनतायें जो यहाँ बर्ती जा रही हैं वे हैं—१. 'ओ' और 'ए' के बदले 'औ' और 'ऐ' का ऐसे स्थानों में प्रयोग जैसे—गयो हुतौ (जो कतिपय छपी हुई प्रतियों में मिलता है) के स्थान पर 'गयौ हुतौ' 'तो सों' के स्थान पर 'तो सौं', 'ऐसो' के स्थान पर 'ऐसौ' आदि और 'यामें' के बदले 'यामै', 'ह्वां तें' के बदले 'ह्वां तैं' आदि। इस सम्बन्ध में हमें कहना यह है कि प्राचीन प्रतियों में 'ओ' और 'ए' की अपेक्षा 'औ' और 'ऐ' की ओर अधिक झुकाव पाया जाता है; इसलिए हमने इसे सामान्य नियम बना कर बर्ता है। शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश के अधिक निकट 'औ' और 'ऐ' हैं। उनमें इनका उच्चारण और लेखन और भी उचग्र हुआ है। 'औ' और 'ऐ' के स्थान पर 'अउ' और 'अइ' प्रयोग मिलते हैं यथा 'पलानिअउ' (पलान्यौ-घोड़े की जीन कसी), 'मुकुलावअइ' ('मुकुलावै'-खोले)। शौरसेनी से ही ब्रजभाषा का उद्गम हुआ है। इसलिए हम कह सकते हैं कि 'औ' और 'ऐ' न केवल ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल हैं वरन् वे 'ओ' और 'ए' की अपेक्षा अपने उद्गमस्थल (शौरसेनी प्राकृत) के अधिक निकट हैं, अतः प्राचीन भी।

२. दूसरी नवीनता है अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु का पृथक् विभाजन और इनके प्रयोग का आधिक्य। अनुस्वार एक पूरी मात्रा है जब कि चन्द्रबिंदु मात्रारहित आनुनासिक है। इनका अन्तर बहुत ही स्पष्ट है। 'हिंसा' में अनुस्वार पूरा है जब कि 'गोसैयाँ' या आवतिँ में वह आनुनासिक-मात्र है। प्रायः लोग इन सभी स्थानों में एक-सा चिह्न ँ बर्तते हैं पर यह या तो असावधानी है या क्षिप्रलेखन और मुद्रण-सम्बन्धी विवशता। प्रस्तुत संग्रह में हमने ह्रस्व वर्णों के साथ लगे हुए मात्रारहित आनुनासिक को चन्द्रबिन्दु ँ द्वारा सूचित किया है और मात्रावाले आनुनासिक को अनुस्वार ं द्वारा जैसे कंस, नंद और मनहिँ, घरहिँ, तुमहिँ, आवहिँ, जाहिँ आदि। किन्तु दीर्घ वर्णों के साथ जहाँ सब स्थानों पर उच्चारणशास्त्र की दृष्टि से चन्द्रबिन्दु लगाना चाहिए था, हम अनुस्वार लगाने को विवश हुए हैं। किन्तु इससे मात्रा-सम्बन्धी कोई विकृति नहीं उत्पन्न होती जैसे 'बाकौं',

उनकौ" आदि के स्थान पर 'वाको' और 'उनकौं' छपा है जो पढ़ने में असुविधा नहीं उत्पन्न करता (यद्यपि शुद्ध प्रयोग 'वाकौ" और 'उनकौ" ही है)।

अब के पहले प्रचलित मुद्रित प्रतियों में जाने पर, पाने पर आदि के अर्थ में 'गए,' 'पाए' आदि का प्रयोग होता रहा है किन्तु 'गए' और 'पाए' रूप भूतकालिक क्रिया के हैं। उनको इनसे पृथक् करने के लिए और 'जाने पर' के 'पर' अंश की सूचना के लिए प्राचीन प्रतियों में अधिकांश स्थलों पर 'गऐ", 'पाऐ" या 'गएँ', 'पाएँ' रूप मिलते हैं। भाषाशास्त्र इन्हीं रूपों का समर्थन करता है। इन्हें हमने ग्रहण किया है।

कुछ पुरानी प्रतियों में 'म' कार के पूर्व वर्ण पर उच्चारण-प्रवृत्ति की दृष्टि से अनुस्वार या चन्द्रबिन्दु लगा हुआ मिलता है, जैसे 'कोंमल' 'कँमल' आदि। किन्तु यह कम स्थानों पर है और इस उच्चारण-प्रवृत्ति का भाषाशास्त्र समर्थन नहीं करता, इसलिए यहाँ हमने प्राचीन प्रतियों के उन निर्देशों का अनुसरण नहीं किया।

कर्मकारक द्वितीया विभक्ति में 'उनहिँ, तिनहिँ, वाकौं, तिनकौं' आदि रूप हमने आनुनासिक रक्खे हैं। ब्रजभाषा में यह विकल्प से द्वितीया में आया है, प्राचीन प्रतियों में भी यह अप्राप्य नहीं है। हमने इनका प्रयोग किया है। रामचरितमानस में द्वितीया के रूप 'वाहि', 'तिनहि' आदि प्रायः अननुनासिक मिलते हैं। षष्ठी या सम्बन्धकारक की विभक्ति में आनुनासिक विकार नहीं पाया जाता। द्वितीया, चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी में हम आनुनासिक बराबर पाते हैं।

षष्ठी में भी जहाँ अधिकरण या अधिष्ठान (सप्तमी) का आग्रह होता है हम कतिपय प्राचीन प्रतियों में अनुस्वार पाते हैं जैसे—'वाकें जाइय' (उसके (घर पर) जाना चाहिए)। ऐसे आग्रहों को हमने भी स्वीकार किया है।

'उसे (स्त्री को) जाती हुई देखा' या 'उसे (स्त्री को) जाते हुए देखा' के दोनों ही प्रयोग हिन्दी में चलते हैं। इनमें पिछला क्रियाविशेषण है और पहला संज्ञाविशेष की भाँति प्रयुक्त हुआ कृदंत। क्रियाविशेषणों की यह परिपाटी संस्कृत में विरल है। संस्कृत में 'आता हुआ पुरुष' और

'आती हुई स्त्री' को ही देखने है। 'आते हुए' किसी क्रिया का विशेषण या सहचर (Adverb या Participle) है यह संस्कृत का नियम नहीं। संस्कृत में 'गच्छन्तम् पुरुषम्' और 'गच्छन्तीम् नारीम्' के ही रूप मिलेंगे, व्रजभाषा में स्त्री और पुंलिङ्ग दोनों में ही 'आवत जात' 'आते जाते हुए' रूप मिलते हैं। हमने इन दोनों प्रयोगों को ठीक मानकर जिस स्थान पर जो मूल प्रति में मिला है व्यवहार किया है। स्त्री जहाँ अपने लिए 'आवत जात' प्रयोग करे वहाँ उसका अर्थ करना होगा 'आते जाते हुए' अथवा 'आते जाते से' और जहाँ 'आवति जाति' प्रयोग करे वहाँ 'आती जाती हुई' का संज्ञाविशेषण रूप मानना होगा ।

'आवति जाति' कहीं तो विशेषण के रूप में (आती हुई, जाती हुई) आते हैं और कहीं असम्पूर्ण क्रिया के रूप में (आती हैं, जाती हैं के अर्थ में)। पिछले अर्थ में बहुवचन रूपों के साथ हमने चन्द्रविन्दु का प्रयोग किया है किन्तु विशेषण रूप में चन्द्रविन्दु का प्रयोग नहीं किया।

छंदों के सम्बन्ध में हमें दो बातें मुख्य रूप से कहनी हैं। अधिकांश छंद मात्रिक हैं। इसलिए मात्राओं की गणना टेकवाली प्रथम पंक्ति को छोड़कर शेष सब पंक्तियों में समान होनी चाहिए। यद्यपि सूरदास जी ने प्राय: सर्वत्र इस नियम का पालन किया है किन्तु कुछ पदों में टेक की दूसरी पंक्ति में चार मात्रायें अधिक भी मिल जाती हैं। ये स्थल इतने कम हैं कि इन्हें प्रक्षिप्त मानकर रत्नाकर जी ने निकाल ही दिया है। मैंने इस संस्करण में उन अतिरिक्त मात्राओं को ज्यों का त्यों रहने दिया है।

ऐसे बहुत-से पद मिलते हैं जिनकी पंक्तियों में एक मात्रा का न्यूनाधिक्य पाया जाता है। एक मात्रा का न्यूनाधिक्य प्राचीन काव्य में अपवादयोग्य नहीं माना गया, यदि उसकी उत्तर पंक्ति में भी एक मात्रा अधिक हो (अर्थात् दो चरणों की मात्रायें समान हों)। कहीं एक मात्रा की पूर्ति के लिए ह्रस्व तुकान्त को दीर्घ कर लेने की प्रथा वर्ती गई है; जैसे रामचरितमानस की चौपाइयों में। इतना स्वातंत्र्य कवियों ने अपने लिए ले रक्खा था।

वर्णिक वृत्तों को भी सूरदास जी ने मात्रिक बनाकर व्यवहार किया है। कबित्त छन्द के कई प्रकार सूरसागर में मिलते हैं पर शायद ही कहीं

अक्षरों की गणना ठीक बैठती हो। कारण यह है कि सूरदास जी ने उन्हें भी मात्रा के आधार पर चलाया है। मात्रा के आधार पर चलाने में उन्होंने एक बड़ी सुविधा देखी थी। जहाँ कहीं मात्रा बढ़े, वहाँ उसे ह्रस्व पढ़ लिया जाय। यह स्वातंत्र्य उन्होंने उन छंदों में अधिक बर्ता है जो मूलत: वर्णिक हैं किन्तु जिनमें वर्णों की गणना ठीक नहीं बैठती। ऐसे स्थलों में हमने उन गुरु वर्णों के नीचे जिन्हें ह्रस्व पढ़ना चाहिए ‘ यह चिह्न लगा दिया है। इससे पाठ में सुविधा होगी।

मात्रिक छंदों में ‿ इस चिह्न के प्रयोग की अधिक आवश्यकता हमें इसलिए नहीं पड़ी कि उनमे कवि ने इस प्रकार का स्वातंत्र्य नहीं बर्ता है। किन्तु वहाँ एक दूसरे प्रकार का स्वातंत्र्य अवश्य पाया जाता है। वह है एक ही शब्द के कई विभिन्न रूपों का प्रयोग—जैसे 'मानौ' शब्द का 'मानौ, मनौ, मनु', 'एक' शब्द 'एक,' 'इक' आदि। इन स्थलों पर हमने सूरदास जी का आँख मूँदकर अनुसरण किया है।

अब लिपि के सम्बन्ध में ही कुछ कहना शेष है। ब्रजभाषा के उच्चारण में हिन्दी के प्रचलित व्यंजनों में से ङ, ञ, ण, श, ष, क्ष और ज्ञ का प्रयोग नहीं होता। संस्कृत के जानकार कुछ कवियों ने इनका प्रयोग तो किया है किन्तु पढ़ने में उनकी आवश्यकता नहीं-सी पड़ती है। 'श्र' एक नये वर्ण के रूप में संस्कृत में बर्ता जाता है। आधुनिक हिन्दी में भी यह प्रचलित है। सूरसागर की प्राचीन प्रतियों में भी इसका यही रूप मिलता है, यद्यपि वहाँ इसका उच्चारण 'स्र' जैसा ही होगा। प्राचीन-परम्परा को देखें तो इसे 'श्र' लिखना ही ठीक होगा किन्तु उच्चारण-सौन्दर्य के लिए इस संग्रह में हमने उसका 'स्र' रूप कर दिया है। 'त्र' संस्कृत का पैंतीसवाँ व्यंजन है। हिन्दी में भी यह इसी प्रकार लिखा जाता है। ब्रजभाषा में यद्यपि इसका उच्चारण 'त' और 'र' के योग जैसा होगा (स्वतंत्र वर्ण के रूप में नहीं) किन्तु लिखा यह इसी प्रकार जायगा। संस्कृत 'क्ष' के स्थान पर 'च्छ' और 'ज्ञ' के स्थान पर 'ग्य' का प्रयोग हमने इस संग्रह के लिए किया है। ङ, ञ और ण के लिए केवल अनुस्वार से काम चला लिया जाता है। ँ का प्रयोग भी ब्रजभाषा में कम है। 'धर्म' को 'धरम' और 'जन्म' को 'जनम' लिखने की परिपाटी है

किन्तु कहीं कहीं छन्द की सुविधा के लिए और कहीं संस्कृतस्वरूप की रक्षा के लिए कवियों ने 'धर्म' और 'जन्म' के प्रयोग भी किये हैं। विकल्प से हमने भी दोनों प्रयोग, जहाँ जैसा मिला, रख लिये हैं।

'न' और 'म' के साथ अन्य व्यंजनों का संयुक्त होना अनुस्वार-द्वारा सूचित किया जाय अथवा संयुक्त वर्णों के रूप में—'हिन्सा' और 'दम्भ' लिखा जाय या 'हिंसा' और 'दंभ'। दोनों ही रूप प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं। इनमें हमने कोई नियम बनाकर उसका अनुवर्तन नहीं किया, न हम वैसा करना उचित समझते हैं। हाँ, प्रेस की सुविधा के विचार से प्रस्तुत संग्रह में प्रायः सर्वत्र अनुस्वार का ही ऐसे स्थानों पर प्रयोग मिलेगा।

'लिये,' 'दिये,' 'आये,' 'गये' आदि रूप इसी प्रकार लिखे जायँ या 'लिए,' 'दिए,' 'आए,' 'गए' यह विषय अब भी विवादग्रस्त बना हुआ है। विवादग्रस्त यह रहेगा ही क्योंकि किसी की तालु और जीभ को कहाँ तक पकड़ा जा सकता है। मुँह बन्द करने का यह ज़माना भी नहीं है। इसलिए इस विषय में पूरी स्वतंत्रता या छूट दे दी गई है। प्राचीन प्रतियों में 'ये' की अपेक्षा 'ए' का आधिक्य अवश्य है पर कतिपय वर्णों के पश्चात् जहाँ 'ए' के उच्चारण में असुविधा होती है 'ये' ही व्यवहार में लाया गया है। यहाँ भी कोई निर्दिष्ट नियम काम नहीं करता। 'कीजियै,' 'लीजियै' 'आनियै' आदि में 'ऐ' की अपेक्षा 'यै' ही अधिक सुकर प्रतीत होता है।

कहीं कहीं एक ही शब्द दो स्थानों पर दो तरह से लिखा मिलता है। 'चक्रित' शब्द में जहाँ चार मात्राएँ पढ़नी होंगी वहाँ यह इसी प्रकार लिखा गया है पर जहाँ 'च' को ह्रस्व पढ़ना है वहाँ 'चकृत' लिख कर काम चलाया गया है। इसी प्रकार 'अमृत' और 'अंमृत' अथवा अम्रित' (पहला तीन मात्राओं के लिए और दूसरे दोनों चार-चार मात्राओं के लिए)।

सूरदास का काव्य

महाकवि सूरदास का काव्य, जिसके कुछ चुने हुए अंश इस संग्रह में एकत्र किये गये हैं अब तक सम्यक् रूप से हमारे अध्ययन और समीक्षण का विषय नहीं बन सका है। इसके जो दो मुख्य कारण हमें दीखते हैं उनमें पहला यह है कि सूरदास जी के प्रधान काव्यग्रंथ सूरसागर का कोई ऐसा संस्करण अब तक प्रकाशित नहीं हुआ जिसे सुन्दर और विशिष्ट तो क्या, संतोष-जनक भी कहा जा सके। दूसरा कारण जो पहले की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है और जो बहुत अंशों तक पहले के लिए ज़िम्मेदार भी है—वह है हिन्दी-साहित्य के आधुनिक विद्वानों की मनोवृत्ति। यह मनोवृत्ति ऐसी है जो सूरदास जी की काव्यगत विशेषताओं की परख के लिए अनु-कूल नहीं कही जा सकती। पहले तो हम सूरदास जी के वात्सल्य और शृङ्गाररस-प्रधान काव्य को, अपनी ऊँची आदर्शवादिता के कारण, श्रेष्ठ काव्य मानने में ही हिचकते हैं, फिर उसे धार्मिक काव्य की श्रेणी में रखना तो हमारे लिए और भी कठिन हो जाता है। काव्य और धार्मिक काव्य दोनों ही के सम्बन्ध में हमने जो पैमाने बना रक्खे हैं उनमें सूरदास जी की कविता किसी तरह पूरी उतरती ही नहीं। हमारे कहने का यह आशय नहीं कि हम सूरदास जी को कवि ही नहीं मानते, पुरानी प्रथा के अनुसार हम उनकी गणना गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ भी कर लिया करते हैं। पर हम हृदय से यह मानने को तैयार नहीं हैं कि सूरदास को गोस्वामी तुलसीदास की बराबरी का पद दिया जाना चाहिए। आज तक मेरे देखने में ऐसी एक भी समीक्षा नहीं आई जिसमें स्पष्ट रूप से प्रमाण देकर सूरदास के काव्य को तुलसीदास जी के काव्य की बराबरी में रक्खा गया हो। कहीं तो प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य के कृत्रिम विभेद खड़े कर, कहीं जीवन-परिस्थितियों की व्यापकता और विस्तार की दुहाई देकर तथा कहीं लोकधर्म, मर्यादा और शील का नाम लेकर सूरदास जी की हेठी दिखाई गई है। इस सबके मूल में जो

स्थूल आदर्शवादी और शुष्क नीतिवादी विचारणा है वह काव्य के मूल्य निरूपण में बड़ी हद तक बाधक हो रही है। किन्तु इस विचारणा से यह सारा युग आक्रान्त है। सूक्ष्म किन्तु जीवन की गहराई में स्थित स्थिर मनोवेगों का उद्घाटन और चित्रण क्या जीवन-परिस्थितियों की व्यापकता और विस्तार का बदला नहीं चुका लेते; लोकधर्म, मर्यादा और शील के निरूपण की अपेक्षा बाल्यकाल की निर्द्वन्द्व क्रीड़ाओं, नटखटपन और नैसर्गिक स्नेहोद्गम का चित्राङ्कण और ग्राम्य तथा वन्य जीवन की सहज सुषमा का प्रदर्शन क्या काव्य और कला के लिए कम उपयोगी या उत्कर्ष-साधक हैं? प्रबन्ध और मुक्तक के बाहरी भेदों का आग्रह करने की अपेक्षा काव्य के अन्तरंग गुणों—रस की प्रगाढ़ता और उसकी मानस-प्रक्षालन क्षमता—की परीक्षा क्या कला-विवेचन के लिए अधिक आवश्यक नहीं? पर हम कब इन कार्यों में प्रवृत्त होते हैं? कब तटस्थ होकर और आड़े आनेवाली आदर्शवादिता को किनारे रखकर, विशुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्यचर्चा करते हैं?

सूरदास जी का सूरसागर केवल काव्य ही नहीं है, वह धार्मिक काव्य भी है। धार्मिक ग्रंथ की दृष्टि से उसका सम्मान जन-समाज में तो है किन्तु विद्वानों के बीच अकसर इस विषय के विवाद उठा करते हैं कि सूरसागर की गणना धार्मिक काव्यग्रंथों में होनी चाहिए या नहीं? धार्मिक काव्य के सम्बन्ध में इन विद्वानों के विचार बहुत कुछ विलक्षण हैं। अधिकांश लोगों का ऐसा ख्याल है कि त्याग, संन्यास और वैराग्य की शिक्षा देने-वाली रचनायें ही धार्मिक काव्य कहला सकती हैं। इस दृष्टि से हिन्दी में कबीर और दादू आदि को ही धार्मिक कवि माना जा सकता है। तुलसीदास को हम इस श्रेणी में इसलिए स्वीकार कर लेते हैं कि उन्होंने नीति और मर्यादाबद्ध राम के उदात्त चरित्र का चित्रण किया है। शेषांश में हम सूर, मीरा आदि की उन रचनाओं को भी धार्मिक काव्य कह लेते हैं जो भजनों के रूप मे प्रचलित हो गई हैं तथा जिनमे किसी चरित्र-विशेष का उल्लेख नहीं। किन्तु जब श्रीकृष्ण के और गोपियों के चरित्रों की बात आती है तब हमारे विद्वान् लोग पशोपेश में पड़ जाते हैं। वे या तो कृष्ण-गोपी-चरित्र को आत्मा परमात्मा का रूपक कहकर टाल देते

हैं या फिर विरोधी आलोचना करने में प्रवृत्त होते हैं। 'ईश्वर की छीछा-लेदर' और 'राधा-कृष्ण' के सम्बन्ध में निकले हुए व्यंग्यात्मक लेख हिन्दी-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। ये दोनों ही दृष्टिकोण सूरदास जी के काव्य और उनकी कलात्मक विशेषताओं के अध्ययन में विशेष रूप से बाधक हैं। इनमें से पहला जो आरम्भ से ही सारे चरित्र को रूपक मान लेता है काव्य के द्वारा उत्पन्न किये गये चारित्रिक महत्त्व और उसके प्रभावों का अनुभव करने का अवकाश ही नही देता। कवियों की कला-जन्य विशेषतायें और काव्यजन्य उत्कर्ष प्रदर्शित ही नहीं हो पाते, क्योंकि हम तो पहले से ही मान बैठे हैं कि राधा और कृष्ण में से एक आत्मा है और दूसरा परमात्मा। जहाँ मान ही लेने की बात हो वहाँ कवि और कविकर्म की परीक्षा कैसे हो सकती है? कवि कवि में जो अन्तर है उसका आकलन कैसे किया जा सकता है और सच तो यह है कि उस दशा में काव्य और कला के अध्ययन की आवश्यकता ही क्या रह जाती है। इसी प्रकार दूसरा दृष्टिकोण जो केवल राधा और कृष्ण के चरित्रों का नाम सुनकर ही चौंक पड़ता है और भड़क उठता है, कवि की रचनाचातुरी और मनोभावना की सम्यक् परीक्षा के बिलकुल विपरीत है। इसे एक प्रकार का स्थूल और उजड्ड दृष्टिकोण कह सकते हैं, क्योंकि इसमें भी काव्यगुणों के अनुसन्धान का प्रयास नहीं है। केवल कथा की बाहरी रूपरेखा सुनकर जो काव्य पर आक्रमण आरम्भ कर देते हैं उन्हें काव्य या कला-विवेचक कौन कहेगा? कुमारी मरियम को कौमार्य में ही ईसा मसीह उत्पन्न हुए थे। अब यदि केवल इस ऊपरी बात को लें तो कितनी अविश्वसनीय और अपवादजनक यह प्रतीत होगी। किन्तु इसी को लेकर ईसाई कलाकारों ने संसार की श्रेष्ठ कलाकृतियों—मूर्तियों और चित्रों का निर्माण किया है जिनके दर्शन से हृदय में पवित्र भावना का प्रवाह बह चलता है। इस अवस्था में उस ऊपरी और अपवादजनक बात का क्या मूल्य रहा, और उसी को मुख्यता देनेवाले व्यक्तियों की क्या वक़त हो सकती है? कथा या कहानी तो बिना खराद का वह ऊबड़-खाबड़ पत्थर है जिस पर कलाकार अपना कार्य आरम्भ करता है। मूर्ति के निर्माण हो जाने पर जब हम उस कला-वस्तु के सामने उपस्थित होते हैं तो क्या

उस पत्थर की भी हमें याद आती है जिसे काट-छाँटकर सँवारा गया और अशेष परिश्रम व्यय कर यह मूर्ति बनाई गई है ? और क्या मूर्तियाँ भी सब एक-सी ही होती हैं ? रचयिता की मनोभूमि जितनी ही प्रशस्त और परिष्कृत होगी, जितनी ही दिव्य और उदात्त कल्पनाओं का वह अधिपति होगा, साथ ही तराश के काम में जितना ही निपुण होगा—जितनी बारीकी से जितने गहरे प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रक्खेगा, मानव-हृदय के रहस्यों को समझने और तदनुकूल अपनी कलावस्तु का निर्माण करने में वह जितना ही कुशल होगा, उसकी कला उतनी ही उदात्त और प्रशंसनीय कही जायगी। कला-विवेचक का कार्य यह नहीं होता कि वह मूल कहानी या कच्चे माल को देखकर ही कोई धारणा बना ले अथवा अपने किन्हीं व्यक्तिगत संस्कारों और प्रेरणाओं से परिचालित होकर कोई राय क़ायम कर ले बल्कि उसे कला-निर्माण-सम्बन्धी विशेषज्ञता प्राप्त करनी होगी, कवि-द्वारा नियोजित प्रतीकों और प्रभावों का अध्ययन करना होगा और अन्ततः कवि की मूल संवेदना और मनोभावना का उद्घाटन करते हुए यह बताना होगा कि वह अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल अथवा असफल हुआ है।

इसी दृष्टि से हम सूरदास जी के काव्य का अध्ययन आरम्भ करेंगे। पाठकों को यह विदित है कि सूरसागर ही सूरदास जी का प्रमुख काव्यग्रंथ और उनकी कीर्ति का स्थायी स्तम्भ है। सूरसागर में यद्यपि श्रीमद्भागवत की कथा का अनुसरण किया गया है और भागवत के ही अनुसार इसमें भी बारह स्कन्ध रक्खे गये हैं किन्तु वास्तव में सूरदास जी का मुख्य उद्देश्य श्रीकृष्ण के चरित्र का ही आलेख करना था। इसी लिए उन्होंने एक चौथाई से भी कम हिस्से में सूरसागर के ग्यारह स्कन्ध समाप्त कर शेष तीन-चौथाई से अधिक भाग एक ही (दशम) स्कन्ध को पूरा करने में लगाया है। यही दशम स्कन्ध कृष्ण-चरित्र है जिसमें कवि की काव्य-कला का सर्वाधिक विकास हुआ है। शेष स्कन्धों की रचना को हम परम्परापालन अथवा भूमिका-मात्र मान सकते हैं। प्रस्तुत संग्रह में, इसी लिए, हमने कृष्णचरित्र के ही चुने हुए अंश एकत्र किये हैं। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि इन ग्यारह स्कन्धों में यत्र-तत्र बिखरे

हुए आख्यानों और विचारों को लोग सूरदास जी की अपनी रचना और अपने विचार मानकर उद्धृत करते हैं। वास्तव में सूरदास जी का स्वतंत्र कौशल और उनकी निजी विचारणा यदि कहीं व्यक्त हुई है तो एक-मात्र दशम स्कन्ध में ही। शेष सभी स्थल अधिकांश श्रीमद्भागवत के संक्षेप-मात्र हैं। उनसे सूरदास का सम्बन्ध केवल अनुवादकर्त्ता का-सा है। स बात को ध्यान में न रखने के कारण अकसर ऐसे स्थलों और विचारों से सूरदास जी का सम्बन्ध जोड़ दिया जाता है जिनसे उनका कुछ भी वास्तविक सम्पर्क नहीं। इस गलतफ़हमी से बचने के लिए ही ऊपर का उल्लेख है।

सूरदास जी का काव्य यद्यपि अधिकतर गीतिबद्ध है पर साथ ही छोटे-छोटे कथा-प्रसंग और घटनाये भी गीतों के भीतर वर्णित हैं। यदि हम सूरसागर के दशम स्कन्ध को ही लें तो देखेंगे कि श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके बाल्य और कैशोर वय के चरित्र तथा उनका मथुरागमन और कंसवध तक की मुख्य घटनायें भी वहाँ संगृहीत हैं। सूरदास जी के काव्य की एक विशेषता यह है कि उसमें एक साथ ही श्रीकृष्ण के जीवन की झाँकी भी मिल जाती है और अत्यन्त मनोरम रूप और भावसृष्टि भी। प्रायः मुक्तक गीत ऐसे प्रसंगों को लेकर रचे जाते हैं जिनमें कथा का कोई क्रमबद्ध सूत्र नहीं मिलता बल्कि कथा-अंश की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें दूसरे विवरणों का आश्रय लेना पड़ता है। गीतभाग में केवल रूप या सौन्दर्य आलेख के टुकड़े सूक्ष्म मानसिक गतियाँ अथवा किसी विशेष अवसर पर उठनेवाले मनोवेगों का प्रदर्शन ही प्राप्त होता है। स्थिति-विशेष का पूरा दिग्दर्शन भी करें, घटनाक्रम का आभास भी दें और साथ ही समुन्नत कोटि के रूप-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य की परिपूर्ण झलक भी दिखाते जायँ; यह विशेषता हमें कवि सूरदास में ही मिलती है। गोचारण अथवा गोवर्द्धन-धारण के प्रसंग कथात्मक हैं। किन्तु उन कथाओं को भी सजाकर सुन्दर भावगीतों में परिणत कर दिया गया है। हम आसानी से यह भी नहीं समझ पाते कि कथानक के भीतर रूप-सौन्दर्य अथवा मनोगतियों के चित्र देख रहे हैं अथवा मनोगतियों और रूप की वर्णना के भीतर कथा का विकास देख रहे हैं। इन दोनों के सम्मिश्रण में अद्भुत सफलता सूरदास जी को मिली है।

कहीं कथनोपकथन की नियोजना करके (जैसे दानलीला में) और कहीं कथा की पृष्ठभूमि को ही (उदाहरणार्थ वन में विचरण, अथवा वन से ब्रज को लौटना) गीतरूप में सज्जित करके समय, वातावरण और कथासूत्र का हवाला दे दिया गया है। सूरदास जी किसी नाटकीय स्थिति-विशेष अथवा किसी ऐकान्तिक मनोभावना-विशेष से आकर्षित होकर परिचालित नहीं हुए हैं। कृष्ण के सम्पूर्ण बालचरित्र पर ही वे मुग्ध हैं। फलतः वे मुक्तक गीतों के अन्तर्गत सारे कथासूत्र की रक्षा करने में समर्थ हुए हैं। अवश्य जहाँ काव्य अधिक अन्तरमुख और मनोमय हो उठा है जैसे वंशी के प्रति उपालम्भ, नेत्रों के प्रति आरोप, विरह, भ्रमरगीत आदि में वहाँ भाव ही कथारूप में परिणत हो गए हैं, कथा की पृथक् योजना वहाँ हम नहीं पाते।

अब हम सूरसागर के अन्य अनावश्यक अंशों को छोड़कर मुख्य दशम स्कन्ध का अध्ययन आरम्भ करें। वर्षा-ऋतु भाद्र मास अष्टमी की अँधेरी आधी रात को चन्द्रमा उदय होने के समय कृष्ण का आविर्भाव होता है। सूरदास इस बात का उल्लेख करना नहीं भूले हैं कि आकाश चन्द्रोदय के समय भी अँधेरा है, किन्तु पृथ्वी पर नवज्योति का आगमन हुआ है। भक्तिकाव्य की परम्परा के अनुसार कृष्ण का चार भुजा धारण कर अवतार लेना सूरदास जी ने भी दिखाया है किन्तु वह चतुर्भुज मूर्ति भी शिशुस्वरूप में है और उसके पृथ्वी पर आते ही माता उन अप्राकृतिक चिह्नों को छिपा देती है। बालक कृष्ण अपने प्रकृत रूप में हमारे सामने आते हैं। कला की दृष्टि से यह अलौकिक आभास एक क्षणिक और उपयोगी संभ्रम की सृष्टि कर जाता है। इतने गहरे वह नहीं पैठता कि माधुर्य की अनुभूति में किसी प्रकार का विक्षेप पड़े यद्यपि उस माधुर्य की तह में ऐश्वर्य की एक हलकी आभा भी अपना प्रभाव डाले रहती है।

असम्भव या अलौकिक की अप्राकृतिक स्मृति को और भी क्षीण करने में सहायक होता है कृष्ण का उसी रात स्थानान्तरित होना जन्मस्थान छोड़कर गोकुल पहुँचाया जाना। रास्ते में कृष्ण की ज्योति का न छिपना और बढ़ी हुई यमुना का कृष्ण के पैर स्पर्श करते ही रास्ता दे

देना पिता वसुदेव की तत्परता और उत्साह का सूचक है। साथ ही मानव-व्यापार में प्रकृति के सहयोग की कल्पना भी इसमें है।

असम्भव या अलौकिक की अप्राकृतिक स्मृति के स्थान पर उसकी एक सहज योजना कृष्ण के गोकुल आने से हो जाती है। वह योजना है कृष्ण के अयोनिज होने की। इसकी बड़ी नैसर्गिक और कलात्मक प्रतिष्ठा की जाती है। यह स्पष्ट ही इस प्रकार कि कृष्ण यशोदा के अंगजात नहीं हैं। योनिज सम्बन्ध न होने पर भी यशोदा के मन में परिपूर्ण पुत्रभाव स्थापित होता है। यह इस प्रकार कि कृष्ण यशोदा की अंगजा के स्थानापन्न होकर आए हैं। यशोदा को इसकी सुध नहीं किन्तु पाठक इसे जाने रहते हैं। इस द्विविधा के द्वारा काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि होती है और आध्यात्मिकता अपने सहज कलात्मक रूप में प्रतिष्ठित होती है।

यशोदा का यह प्रौढ़ावस्था का पुत्र है जब कि माता यौवन की सीमा पर पहुँचकर ठहर चुकी है और निराशा के साथ नीचे ढलना आरम्भ कर रही है। इस संधिकाल का स्पर्श करना कृष्णकाव्य की एक बड़ी कलात्मक सूझ है। कृष्ण के प्रति अकेले और बड़ी साध के बाद पाये हुए पुत्र का प्यार उभर पड़ता है। कुमारी मरियम का पुत्र यौवन के अनबींधे आरम्भ का है और यशोदा का पुत्र यौवन के अन्तिम अवशेष क्षण का है। युवती की प्रतिमा दोनों ओर है—एक यौवन के इस पार, दूसरी उस पार। एक का पुत्र आशा के पहले और दूसरे का आशा के पश्चात् प्राप्त होता है।

कृष्ण का व्यक्तित्व कुछ अपने सहज सौन्दर्य के, कुछ माता के स्नेहातिरेक के कारण (ये दोनों ही नैसर्गिक अनुपात में हैं इसलिए काव्य के कलात्मक विकास में सहायक भी) तथा शेष कुछ पिता के ग्रामाधिपति होने के कारण (यह एक आकस्मिक अथवा संयोगसिद्ध प्रसंग है जिस पर अनावश्यक भार कवि ने कभी नही चढ़ने दिया) प्रमुख रूप से सामने आता है और अन्त तक निसर्गत: प्रमुख ही रहता है। प्रमुखता तो काव्यों के सभी नायकमात्र के लिए आवश्यक होती है किन्तु कृष्ण की प्रमुखता कुछ ऐसी विशेषताएँ रखती है जो आध्यात्मिक काव्य के लिए आवश्यक

हैं। इनमें सबसे पहली और मुख्य विशेषता है चरित्र के अन्तर्गत एक रहस्यात्मक पुट। रहस्यात्मक पुट तो जो भी जितना चाहे रख सकता है; किन्तु काव्य में मनोवैज्ञानिक विश्वसनीयता भी अतिशय आवश्यक होती है। इन दोनों का सामञ्जस्य स्थापित करने में ही धार्मिक अथवा आध्यात्मिक काव्य की सफलता है। कोरे धर्मग्रंथ और उन्नत धार्मिक काव्य में यही मुख्य अन्तर है कि एक में हमारे विश्वास को असीम मानकर वर्ता जाता है और दूसरे में हमारे स्वस्थ मानसिक उपकरणों के साथ न्याय किया जाना है। लक्ष्य दोनों का एक ही होता है—चरित्र की अलौकिकता की नियोजना करना, किन्तु इन दोनों की प्रणालियों में सारा अन्तर हुआ करता है।

जिन असाधारण और क्षिप्रवेग से घटी प्रथम दिन की घटनाओं का विवरण हम दे चुके हैं और साथ ही जिन मानसिक परिस्थितियों और प्रतिक्रियाओं का ऊपर उल्लेख कर चुके हैं उनके बाद कृष्णचरित्र की असाधारणता के लिए ज़मीन तैयार है, ऐसा कहा जा सकता है। देखना यह है कि वह असाधारणता अथवा रहस्यात्मकता कितने नैसर्गिक रूप से प्रस्फुटित होती है। कृष्णजन्म की बधाई बज चुकी है और विशेष उत्सव मनाये जा चुके हैं। अन्नप्राशन और जन्मदिन की तिथियां बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुई हैं। दिन भर गाँव भर की भीड़ नंद के आँगन में रहा करती है, बालक कृष्ण की क्रीड़ायें देखने के लिए गोपियों का आवागमन लगा ही रहता है। नंद का आँगन मणियों का बना है, खम्भे कंचन के हैं, इतनी अतिरिक्त सौन्दर्य-योजना आसानी से खप जाती है।

तीन वर्ष बीतते ही बीतते कृष्ण आरम्भ करते हैं चोरी, घर के भीतर नहीं, बाहर समाज में चोरी, गोपियों के घर-घर में माखन और दही की चोरी और उत्पात। चोरी सामाजिक धारणा में एक अपराध है, पाप है। और गोपिकाओं को रोज़-रोज़ तंग करना भी कोई सदाचार नहीं। पर ग्राम के वातावरण और गोपियों की मनःस्थिति में बालक कृष्ण की यह मूर्ति पाप-पुण्य निर्लिप्त दीख पड़ती है। चोरी करते हुए भी वे गोपियों के मोद के हेतु बनते हैं और अपने उत्पातों-द्वारा उनके प्रेम के अधिक निकट पहुँचते हैं। पाप-पुण्य निर्लिप्त इस

शुद्धाद्वैत की प्रतिष्ठा बिना चोरी किये कैसे होती ? अकर्म के भीतर से पवित्र मनोभावना का यह प्रसार एक रहस्य की सृष्टि करता है। यह रहस्य प्रकृत काव्यवर्णना का अंग बनकर आया है, यही सूरदास की विशेषता है। भक्ति-काव्य का यह कौशल ध्यान देने योग्य है।

कृष्ण के इस स्वाभाविक नटखटपन के साथ जिस रहस्य की सृष्टि हो गई है कवि समस्त काव्य में उसकी रक्षा और प्रवर्द्धन करता रहता है। स्वाभाविकता में अलौकिकता का विन्यास सूरदास की मुख्य काव्यसाधना है। इस साधना में सर्वत्र वे सफल ही हुए हों यह नहीं कहा जा सकता; कहीं-कहीं वे रूढियों म भी फँस गये है, वहाँ काव्य का मनोवैज्ञानिक सूत्र खो गया है; फिर कही-कही वे परम्पराप्राप्त 'मान' आदि के विस्तृत विवरणों में इतने व्यस्त हो गये हैं कि उनका रहस्यात्मक पक्ष नीचे दब गया है, ऊपर आगई है कोरी और स्थूल शृङ्गारिकता। मैं इन स्थलों को सूरदास के काव्य की असफलता मानता हूँ, किन्तु सफलता के स्थल असफलता से कहीं अधिक हैं।

यहाँ मैं असफलता के कुछ हवाले दूँगा। कृष्ण के बाल्यचरित्र में कतिपय राक्षसों और राक्षसिनियों के वध किये जाने के आख्यान मिलते हैं। कतिपय विद्वानों ने इन आख्यानों में कृष्ण की शक्तिमत्ता का निदर्शन पाया है। जब से आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने शक्ति, सौन्दर्य और शील की पराकाष्ठा राम के चरित्र म दिखाई है तब से लोगों ने समझ लिया है कि य तीनो गुण काव्यचरित्रों के लिए अनिवार्य है और जहाँ कहीं अवसर आये इनकी ओर इंगित कर देना चाहिए। यह भ्रान्ति कला की विवेचना मे अत्यधिक बाधक हो रही है। केवल शक्ति की, सौन्दर्य की अथवा शील की पराकाष्ठा दिखाना किसी काव्य का लक्ष्य नहीं हो सकता। काव्य का लक्ष्य तो होता है रस-विशेष की प्रतीति या अनुभूति उत्पन्न करना। इस काव्य-लक्ष्य को भूल जाने पर काव्य का समस्त कलात्मक और मनोवैज्ञानिक आधार ढह पड़ता है। फिर तो किसी पात्र में किन्हीं गुणो की योजना कर देना—वे गुण चाहे काव्यशैली से प्रभावोत्पादक अथवा विश्वस-

मीय बनाये जा सके हों या नहीं—कविकर्म समझा जाने लगता है। यह कलात्मक और काव्यात्मक ह्रास का लक्षण है। कृष्ण के साथ बाल्यावस्था में राक्षसवध की जो अलौकिक लीलायें जुड़ी हुई हैं जब तक उनका संकेतात्मक मानसिक आधार नहीं मिलता, तब तक काव्य की दृष्टि से उनका क्या मूल्य है? कोई यह नहीं कह सकता कि कृष्ण ने वास्तव में वे कार्य नहीं किये थे, किन्तु काव्यकृति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि असम्भव के आधार पर वह अपना कार्य आरम्भ न करे। प्रतीति के लिए उन मानस-सूत्रों का संग्रह आवश्यक है जो उन घटनाओं को विश्वसनीय ही नहीं वास्तविक भी बना सकें। काव्य में किसी चरित्र के साथ किसी गुण की पराकाष्ठा नियोजित करना पर्याप्त नहीं है; उसकी प्रतीति की पराकाष्ठा भी नियोजित करनी होगी।

कई राक्षस पक्षी, बछड़े और गदहे और आँधी आदि का वेष बना कर आये थे, कृष्ण के द्वारा उनका पछाड़ा जाना स्वाभाविक रूप से चित्रित है; पर कतिपय आख्यानों में सूरदास जी ने परम्परा का पालन भर कर दिया है, कथा को कला का स्वरूप देने की चेष्टा नहीं की। ब्रह्मा द्वारा बछड़ों के हरे जाने पर नये बछड़े और गोपबालक उत्पन्न करनेवाला आख्यान, पूतनावध तथा ऐसे ही अन्य कतिपय प्रसंग अपना सम्यक् मनोवैज्ञानिक आधार सूर के काव्य में नहीं पा सके हैं। इन्द्र का देवताओं-सहित कृष्ण के पास ब्रज आना केवल पौराणिक चित्रण है।

इसी प्रकार सूरदास जी के द्वारा चित्रित गोपिका-मान-प्रसंग को भी लीजिए। सूरदास जी ने उसका मूलगत रहस्यात्मक आशय खूब अच्छी तरह समझा था। उन्होंने आरम्भ में बड़े सुन्दर ढंग से इस रहस्य की सूचना दी है। राधा का मान वास्तव में भ्रान्तिमूलक था। उन्होंने कृष्ण के हृदय में अपनी परछाहीं देखकर यह समझ लिया कि इनके हृदय में कोई दूसरी गोपी बसती है। बस इसी कल्पना के आधार पर वे रूठ गईं। कवि का प्रारम्भिक आशय यह दिखाना रहा है कि गोपियाँ राधा की ही परछाँहीं या प्रतिरूप हैं। कृष्ण का उनसे सम्पर्क राधा के प्रति ही सम्पर्क है। सोलह हजार एक सौ आठ गोपिकाओं से कृष्ण का सम्बन्ध दो दृष्टियों से प्रदर्शित है। एक तो कृष्ण के प्रेम की

व्यापकता और सार्वजनीनता दिखाने के लिए (जिसमें ऐन्द्रिय भाव संस्कृत और कलात्मक उद्यमों, नृत्य, गीत आदि में लीन हो जाय) और दूसरा कृष्णचरित्र को निसर्गतः रहस्यात्मक अथवा अलौकिक स्तर पर पहुँचाने के लिए। किन्तु हुआ क्या? हुआ यह कि काव्य में कृष्ण का बहुनायकत्व ही अधिक उभर उठा है। रहस्यात्मक पक्ष पिछड़ गया। कृष्ण एक-एक रात एक-एक गोपी के साथ व्यतीत करते और प्रातःकाल रक्तिम नेत्र, विचित्र वेष बनाकर दूसरी गोपिका के घर पहुँचते हैं। वहाँ उनका जैसा स्वागत होना चाहिए वैसा ही होता है। फलतः यहाँ कृष्ण थोड़ी-सी निर्लज्जता भी धारण करके स्थिति का सामना करते हैं। एक तो इस प्रसंग को इतना अनावश्यक विस्तार दे दिया गया है कि मूल भाव सँभाले नहीं सँभला और दूसरे इसकी वर्णना में रहस्यात्मक व्यभिचार (सब गोपिकाओं से, जो वास्तव में एक ही गोपी की प्रतिकृति है, समान प्रेम) ने स्थूल जारत्व का रूप धारण कर लिया है। मेरे विचार से सूरदास की कला इस प्रसंग में उस उच्च उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकी है जिसके लिए इस प्रसंग की नियोजना की गई थी। यहाँ वह अपने उच्च लक्ष्य और समुन्नत मानसिक धरातल से स्खलित हो गई है।

इसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि इस प्रसंग को यहाँ रखने का उद्देश्य केवल कृष्ण की इस प्रतिज्ञा की पूर्ति करना है कि जो कोई उन्हे जिस भाव से भजता है उसको वे उसी भाव में मिलते हैं। सब गोपिकाओं ने मिलकर उन्हें पति रूप में भजा था; इसलिए सबके प्रति वे समान व्यवहार दिखाना चाहते हैं। किन्तु इस प्रतिज्ञा को इस हद तक खींचना ठीक न होगा कि काव्य में कृष्ण व्यभिचारी और कामुक के रूप में दिखाई देने लगें। गोपिकाओं की कामनापूर्ति बड़े सुन्दर, स्वाभाविक और रहस्यात्मक रूप में रास-रचना द्वारा हो चुकी थी। बाह्य ऐन्द्रिय सम्बन्ध को शब्दशः पूर्णता तक पहुँचाना सूरदास जैसे उच्च कोटि के कवि का लक्ष्य नहीं हो सकता। मालूम होता है उस युग की बहुपत्नी प्रथा के दुष्परिणाम से सूरदास जी का काव्य भी कोरा न रह सका।

किन्तु ऐसे स्थलों को हम अपवादस्वरूप ही ले सकते हैं। मुख्यत: सूरदास जी की कला उदात्त मानसिक भूमि पर ही खड़ी है। अवश्य कई बार राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों में शारीरिक संयोग की भी चर्चा आई है (हमारे देश के कवियों ने प्रेम के इस परिपाक को स्वाभाविक मानकर स्वीकार किया है 'रोमांटिक' ढंग से किनारा काटने की प्रथा उनकी नहीं थी) पर ये स्थल, काव्य में अन्य स्थलों की भाँति ही प्रसंगत: आ गये है, इनके लिए कतिपय अतिवादी कवियों की भाँति कोई खास तैयारी सूरदास जी ने नहीं की है।

मेरी अपनी धारणा यह अवश्य है कि सूरदास जी को ऐसे स्थल बचा जाने चाहिए थे अथवा संकेत से काम ले लेना था; क्योंकि धार्मिक काव्य के रचयिता को सामाजिक मर्यादा अधिक बरतनी होती है। फिर भी मैं यह कहूँगा कि स्नायुओं को विकृत कर देनेवाली आजकल की दीर्घसूत्री अनुरागचर्याओं की अपेक्षा सूरदास जी का उपक्रम फिर भी बुरा नहीं। अवश्य उन्हें प्रेम या अनुराग की यह परिणति दिखाने से कोई नहीं रोकता। (बल्कि यह आज के समाज के लिए किसी अंश तक उपयोगी भी है); किन्तु शिष्टाचार के विचार से ऐसे प्रसंगों को मर्यादा की सीमा में रखना था। सर्वत्र सूरदास जी ने ऐसा नहीं किया है, उनके समय की काव्यपरिपाटी में, जान पड़ता है, इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

ऐसे ही, चीरहरण के अवसर पर कृष्ण के मुख से गोपियों से यह कहलाना कि तुम हाथ ऊपर कर जल से निकलो और अपने-अपने वस्त्र लो, सूरदास जी की सुरुचि का परिचायक नहीं है। सच्चे प्रेम की अगोपनीयता प्रकट करने के लिए कवि के पास कोई दूसरा उपाय नहीं था, यह मैं नहीं कह सकूँगा। उनके उद्देश्य के सम्बन्ध में शंका न रखते हुए भी यहाँ उनकी शैली को मैं निर्दोष नहीं कह सकता।

पर जैसा कि मैं कह चुका हूँ, ये इने-गिने स्थल अपवादस्वरूप ही हैं और सूरदास जी के बृहत् काव्य पर कोई गहरा धब्बा नहीं लगाते। जो धब्बे हमें आज की दृष्टि से देख भी पड़ते हैं वे सम्भव है किसी युग-विशेष में क्षम्य भी हों। कम-से-कम यह तो कोई नहीं कह सकता कि

सूरदास जी के काव्य में चित्रित राधा और कृष्ण का प्रेम अतिरिक्त भावात्मक उद्रेक या उबाल का द्योतक है अथवा उसमें निःशक्त कामुकता या दमित वासना के लक्षण है। यदि यह त्रुटि नहीं है तो और सब आरोप गौण हो जाते हैं। यदि अनुराग के आरम्भ में तीव्र आकर्षण, ऐकान्तिक मिलनेच्छा और सामाजिक मर्यादालंघन की प्रेरणायें काम करती हैं तो प्रथम मिलन के पश्चात् तत्काल ही राधा में प्रेमगोपन-चातुरी, वाग्विलास आदि की सामाजिक भावना जाग्रत हो जाती है जो प्रेम के स्वस्थ विकास का परिचायक है।

अब मैं कृष्ण की माखन-चोरीवाले प्रसंग पर छूटी हुई सूरसागर की अपनी सरसरी आलोचना के सूत्र को फिर से पकड़ लूँ। मैं कह चुका हूँ कि यह प्रसंग जहाँ एक ओर गोपियों के स्नेह की सहज धारा प्रवाहित कर देता है वहीं यह पाप-पुण्य निर्लिप्त कृष्ण के उपास्य और रहस्य शुद्धाद्वैत बालरूप का भी उद्घाटन करने में सहायक हुआ है।

इसके पश्चात् सूरदास जी निरंतर नायक (कृष्ण) का सहज और साथ ही रहस्यमय गौरव दिखाते हुए काव्य और उपासना की दोहरी आवश्यकता-पूर्त्ति करते गये हैं। माखन चोरी का ही वयप्राप्त स्वरूप कृष्ण की दानलीला में दिखाई देता है। यहाँ प्रेमकलह के खुले हुए दृश्य हमें दिखाई देते हैं। कृष्ण के दधिदान (दधि पर लगनेवाला कर) माँगने पर गोपियों को कृष्ण से उलझने, वाक्‌युद्ध करने, धमकी देने और बदले में धमकी पाने का अवसर मिलता है। अंत में एक ओर राधा और उनकी सब सखियाँ तथा दूसरी ओर कृष्ण और उनके सब सखा खुलकर आपस में कहा-सुनी करते हैं। हाथा-पाई की नौबत भी आती है और अंत में गोपीदल सखा-समेत कृष्ण को भरपूर माखन-दधिदान कर, अपने सामने भोजन करा निवृत्त होता है। गोपियों के प्रेम की यह दूसरी बड़ी स्वीकृति कृष्ण ने दी है।

इसके पूर्व ही राधा का कृष्ण से परिचय समागम हो चुका है। राधा की भावी सास (यशोदा) ने उसकी माँग गूँथी और नई फरिया (बिना मिला लहँगा) भेंट की है। आँचल में मेवे डाले हैं। राधा की माता को पुत्री के सामने गाली दी (विनोद-वचन कहे) और पिता को भी,

जिस पिछले का बदला वह राधा के द्वारा ही पा चुकी है। फिर उसने सूर्य की ओर आँचल पसार कर उनसे आशीर्वाद माँगा है कि नई दम्पति का कल्याण हो।

इस रमणीय प्रेम और गार्हस्थ्य प्रसंग को पुनः रहस्य की आभा से अनुरंजित करने के लिए सूरदास जी ने समस्त कुमारिकाओं से कात्यायनी व्रत कराया और पतिरूप में कृष्ण को पाने की कामना करके कार्तिक चतुर्दशी को उपवास और रात्रि-जागरण के पश्चात् पूर्णमासी को यमुना-स्नान करते हुए दिखाया है। यही अवसर चीर-हरण का है।

भागवत् में राधा का व्यक्तित्व परिस्फुट नहीं हो पाया है, इसलिए वहाँ व्यक्तिगत प्रेमालाप, वैवाहिक लोकाचार आदि का अवसर ही नहीं आया। बिना व्यक्तित्व के प्रेम की प्रगाढ़ता कैसे प्रकट होती ? सूरदास जी ने इस अंश की सम्यक् पूर्ति की और फिर भागवत् की ही भाँति उपास्य कृष्ण की भी स्थापना कर दी। जिस कौशल के साथ राधा और कृष्ण के एकनिष्ठ, व्यक्तिगत, प्रगाढ़ प्रेम सम्बन्ध को सामूहिक स्वरूप सूरदास जी ने दिया है, कृष्ण की प्रेममूर्ति को जिस चातुरी के साथ समाजव्यापी आराधना का पात्र बना दिया है, धार्मिक काव्य के इतिहास में उसके जोड़ की कोई वस्तु शायद ही मिले।

कृष्ण के सौन्दर्य को राधा की अनुरक्त दृष्टि ने रहस्यमय बना दिया है, गोपियाँ जब कि कृष्ण के अंग-अंग के सौन्दर्य का वर्णन करती हैं तब राधा कहती हैं मैंने तो कृष्ण को देखा ही नहीं। एक अंग पर दृष्टि पड़ते ही आँखें भर आती हैं। सारे अंगों को देखने की कौन कहे? उनके अंगों पर कभी निगाह ही नहीं ठहरती। सौन्दर्य भी प्रतिक्षण और ही रूप धारण कर लेता है। यह रहस्यमय सौन्दर्यदर्शन है, जिसकी शिक्षा गोपियाँ राधा से लेती हैं।

राधा तो कृष्ण प्रेम की प्रयोगकर्त्री हैं। वे स्वतः प्रेम की आकर हैं। किन्तु सूरदास जी का प्रयोजन एक मात्र आकर से ही नहीं सिद्ध होता; वे घर-घर उस आकर का प्रसार भी चाहते हैं। एतदर्थ राधा की सखियों की नियोजना की गई है जो प्रयोगकर्त्री राधा के संदेश को शतशः प्रणालियों से सारी दिशाओं में फैला देती हैं। ब्रज की रज-रज में कृष्ण-

प्रेम की सुगंधि व्याप्त हो गई है। भक्ति की बेल इसी रज में से अंकुरित होती, बढ़ती और छा जाती है।

राधा श्रीकृष्ण की भक्त हैं अथवा प्रेमिका? सूरसागर में वे सर्वत्र कृष्ण की समानाधिकारिणी प्रेमिका हैं। उनकी श्री-शोभा पर कृष्ण मुग्ध हैं। कृष्ण के रूपलावण्य पर राधा रीझी हैं। क्या यह भक्ति का सम्बन्ध है? नहीं यह प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध है। किन्तु इसी प्रेमी-प्रेमिका सम्बन्ध का जब सामाजीकरण होता है, जब प्रत्येक गोपी राधा बनकर कृष्ण की आराधना करती है तब स्वभावतः भक्ति का आगमन होता है। प्रेमी कृष्ण के द्वारा ही आराध्य कृष्ण की स्थापना सूरदास जी ने जिस सुचारु कोटिक्रम से कराई है वह काव्य-जगत् में एकदम अनोखा है।

रास वह स्थल है जहाँ प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध समाजव्यापी होकर रहस्यमयी भक्ति में परिणत हो जाता है। श्रीकृष्ण सहस्रों गोपिकाओं के साथ रास में सम्मिलित होते और सबकी कामना-पूर्ति करते हैं। यहाँ प्रेमिका की व्यक्तिगत सम्बन्ध-धारणा और तज्जन्य गर्व का निराकरण भी किया गया है। राधा यह सम्बन्ध-धारणा रखती थीं, इसलिए कृष्ण कुछ काल के लिए अंतर्धान हो जाते हैं। जब राधा का यह गर्व दूर होता है तब कृष्ण पुनः उसके सामने आते हैं।

प्रेमी-प्रेमिका-सम्बन्ध की यह अंतिम परिणति ध्यान देने योग्य है। यह व्यक्तिगत सम्बन्ध का पूर्ण समाजीकरण है, जिसे हम भक्ति कह सकते हैं। रास में असंख्यों गोपियों का भाग लेना, नृत्य-गीत आदि के द्वारा सबकी कामनापूर्त्ति, रहस्यमय रूप से सारी मंडली का कृष्ण-केन्द्र से संपर्कित होना और फिर रास में कृष्ण के वंशीवादन का प्रभाव—पाषाणों का द्रवित होना, यमुना की गति का स्तंभित होना, चंद्रमा का ठहर जाना, सभी एक ही लक्ष्य की ओर इंगित करते हैं—सान्त का अनन्त में, व्यष्टि का समष्टि में पर्यवसान। इसलिए कृष्ण का रास अनंत कहा गया है। यह वह आदर्शस्थिति है जिसमें पूर्ण सामरस्य की स्थापना हो गई है, विक्षेप का कहीं अस्तित्व नहीं। संकीर्णता के हेतुभूत गर्व और अहंकार गलित हो गये हैं, घुलकर बह गये हैं और धुलकर

निकली है दुग्धधवल शरच्चन्द्रिका म म्न और छिटक रही उज्ज्वल कृष्णभक्ति ।

यह न समझना चाहिए कि हम आये दिन बाज़ारों में रामलीलासम्बन्धी जो भद्दे चित्र देखा करते हैं वही सूरदास का भी राम है। रास नाम तो दोनों में समान है; किन्तु उसके अंकन में सूरदास जी की समता करना साधारण चित्रकारों का काम नहीं। रास की वर्णना में सूरदास जी का काव्य परिपूर्ण आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच गया है। केवल श्रीमद्भागवत की परंपरागत अनुकृति कवि ने नहीं की है; वरन् वास्तव में वे अनुपम आध्यात्मिक रास में विमोहित होकर रचना करने बैठे हैं। उन्होंने रास की जो पृष्ठभूमि बनाई है जिस प्रशान्त और समुज्ज्वल वातावरण का निर्माण किया है, पुन: रास की जो सज्जा, गोपियों का जैसा संघठन और कृष्ण की ओर सबकी दृष्टि का केन्द्रीकरण दिखाया है और रास की वर्णना में संगीत की तल्लीनता और नृत्य की बँधी गति के साथ एक जागरूक आध्यात्मिक मूर्च्छना, अपूर्व प्रसन्नता के साथ प्रशान्ति और दृश्य के चटकीलेपन के साथ भावना की तन्मयता के जो प्रभाव उत्पन्न किये हैं, वे कवि की कला-कुशलता और गहन अंतर्दृष्टि के द्योतक हैं। उनके काव्य-चमत्कार की तुलना में बाज़ारू चित्रों को रखना, मणियों का मूल्य शाकभाजी-द्वारा आँकना है।

रास के पश्चात् विशेषत: मान का वर्णन कवि ने किया है जिसके सम्बन्ध में हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। मान का हेतु है राधा का अन्य गोपियों से अपने को पृथक् समझना, जब कि कवि की रहस्योन्मुख कला में वे राधा की प्रतिच्छायामात्र हैं। इस लीला का आशय इस रहस्य को मुखरित करना ही था; किन्तु वर्णन की अतिरंजना में कवि का मूल उद्देश्य विलुप्त हो गया और राधा की भ्रान्ति के स्थान पर कृष्ण का अपराधी रूप ही उभर आया है। निश्चय ही यह कवि की भावना के अनुरूप सृष्टि नहीं है।

कला की दृष्टि से मानप्रसंग का एक दूसरा प्रयोजन राधा के व्यक्तित्व की विशेषत: उसके सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करना भी हो सकता है—वह सौन्दर्य जिसका आकर्षण कृष्ण को भी विभ्रान्त कर देता है (गोपियों

की तो हस्ती ही क्या ?) और वह व्यक्तित्व जिसके सामने कृष्ण भी झुककर प्रार्थी होते हैं। किन्तु इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए यह उपयुक्त अवसर नहीं कहा जा सकता। इसमें राधा का सौन्दर्याकर्षण यद्यपि प्रमुख हुआ है किन्तु उससे भी प्रमुख हो गई है उनकी गोपियों की प्रति ईर्ष्या। क्या कवि का यह उद्देश्य (ईर्ष्या को प्रमुखता देना) हो सकता है ?

उच्च कला और सौन्दर्यस्थापना की दृष्टि से इसका समर्थन नहीं किया जा सकता, यद्यपि एक प्रकार के श्रद्धालु यह कहेंगे कि राधा की ईर्ष्या उनके अन्य गोपियों की अपेक्षा सुन्दर सज्जा करने और कृष्ण प्रेम की एकान्त अधिकारिणी बनने में सहायक हुई है। उस समर्थक वर्ग की दलील भी हम सुन चुके हैं जो यह कहता है कि प्रत्येक गोपी ने जिस-जिस भाव से कृष्ण को भजा उसकी पूर्त्ति उन्होंने की। उन्हीं में के कुछ यह भी कहेंगे कि बिना शारीरिक संयोग के गोपियों में उस विरह की जाग्रति दिखाना सम्भव न था जो कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् समस्त व्रज में छा गया है। इस प्रकार की विचारणा उस विशेष वर्ग की है जो तांत्रिक रहस्यवादी पद्धतियों का अनुयायी है। मेरे विचार से श्रेष्ठ कला और दर्शन की आवश्यकतायें इससे भिन्न हैं।

मानमोचन के बाद ही वसंत और होली के अवसर आते हैं, जिनमें सामूहिक गान, वाद्य और छीना-झपटी के चटकीले और रंगीन दृश्य दिखाई देते हैं। इसके पश्चात् सागर-स्नान और स्नानान्तर स्वच्छ नूतन वस्त्र धारण करना और फिर पुष्पमालाओं से आच्छादित स्वर्ण-हिंडोल में गोपियों से परिवेष्टित राधा-कृष्ण की झूलती हुई ऐश्वर्यशालिनी झाँकी। यहीं कृष्ण की व्रजलीला समाप्त होती है। पर्दा गिरता है। प्रशान्त ओजस्विता और प्रसन्न समादर के प्रभाव लेकर दर्शकमंडली (व्रज की गोप-गोपियाँ) घर लौटती है।

इस अवसर पर जब व्रज में सब ओर सुख-समृद्धि छा गई है और हिंडोल-स्थित राधा-कृष्ण की किशोर मूर्त्ति चरम आकर्षण का विषय बन चुकी है, एक ऐसी निष्क्रियता और आत्मनिद्रा की सम्भावना है जो स्वभावतः ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न होनी है। शेषशायी भगवान् नारायण के-से

दिव्य किन्तु प्रस्थिर और गतिहीन स्वरूप का उद्घाटन करना सूरदास की कला का लक्ष्य नहीं था, नहीं तो वे इसी स्थान पर अपना काव्य समाप्त कर देते। पर वे सारे व्रज-मंडल को चौंका देते हैं, कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना देकर। असम्भावित रूप से एक ऐसा झोंका आता है जो सुख के प्रशान्त पारावार को दुःख की तरंगों से अभिभूत कर देता है। सबके सब चकित हो रहते हैं और कर्तव्यशून्य होकर क्षोभ के महानद में डूबते-उतराते हैं। काव्य में जीवन की प्रगति का यही स्वरूप है। कृष्ण का कार्य अब ब्रज में नहीं मथुरा में है। इसलिए वे समस्त काम्य सम्बन्धों और प्रेमबन्धनों को दूसरे ही क्षण तोड़ देने को (हृदय पर पत्थर रखकर) तैयार हो जाते हैं।

विजय का पूर्ण विश्वास प्रतिक्षण मन में रखते हुए भी (अर्थात् भीतर से निश्चिन्त होते हुए भी) बाहर विकट संघर्षों का सामना कृष्ण को करना पड़ता है। वे सच्चे अर्थ में क्रान्तिकारी का आत्मविश्वास और उसी की-सी कष्टसहिष्णुता लेकर इस नये नाट्य में प्रवेश करते हैं। अदने से अदना कार्य वे अपने हाथों करते हैं (क्योंकि वे किसी समृद्ध सेना के नायक नहीं, नये क्रान्तिकारी हैं) और अदनी से अदनी बात सुनने को तैयार रहते हैं। सूरसागर के इस प्रसंग को देखने पर इसकी अद्भुत समानता उन रचनाओं से देख पड़ती है जिनमें प्रचलित समाजव्यवस्था अथवा राजव्यवस्था के विरुद्ध क्रान्तिकारी चरित्रों की अवतारणा की गई है। रजक के साथ कृष्ण का झगड़ा, उससे कपड़े छीनकर अपने साथियों को पहनाना (बहाना यह कि राजा के दरबार में मैले कपड़े पहन कर कैसे जायँ!) पाश्चात्य क्रान्तिकारी प्रसंगों की याद दिलाता है। मल्लयुद्ध के पूर्व कूबरी का मिलना और तिलक सारना एक ऐसा विचित्र और शुभसूचक मनोवैज्ञानिक उपादान है जो आधुनिक क्रान्तिमूलक रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में मिल जाता है। कंस-वध के पश्चात् कृष्ण सबसे पहले कूबरी के घर जाकर ही उसका स्वागत-सत्कार ग्रहण करते हैं। कंस के दुराचारों के भार से दबकर ही मानों वह कूबरी हो गई थी और कृष्ण के आते ही वह सुन्दर अंगोंवाली हो जाती है।

यहाँ, ब्रज में, कृष्ण कितने कोमल प्रेमतंतुओं को छिन्न-भिन्न कर गये हैं, इसका कुछ अंदाज़ गोपियों की विरहकातर पुकार से लग सकेगा। आज के समीक्षक को यह एतराज़ है कि कृष्ण के कुछ मील दूर, मथुरा जाने पर गोपियों के रोने-धोने का इतना बड़ा पवाँरा सूरदास ने क्यों एकत्र किया? यही नहीं, सूरसागर काव्य के जो सर्वोत्कृष्ट स्थल हैं—वंशी को लक्ष्य करके दिये गये सैकड़ों उपालंभ, जिनमें सूक्ष्म प्रेमभावना भरी हुई है, नेत्रों पर किये गये अनेकानेक आरोप जिनमें रहस्यात्मक सौन्दर्य-व्यञ्जना है, इन आलोचकों को व्यर्थ की मानसिक उधेड़बुन और एक अतिभावुक युग का काव्यावशेष समझ पड़ता है। किन्तु यह समझ एकदम भ्रान्त है। असल में इन्हीं वर्णनाओं में जो कवि की उत्कृष्ट तल्लीनता और सूक्ष्म मानसिक पहुँच तथा अधिकार की द्योतक हैं, कवि ने कृष्ण के रहस्यमय स्वरूप का निर्देश किया है, वह स्वरूप जो भक्ति का आधार और भक्तों का इष्ट है। भक्ति और भक्त के नाम सुनकर कोई मिथ्या धारणा नहीं बना लेनी चाहिए। मैं कह चुका हूँ कि व्यक्तिगत प्रेम का सामूहिक सामाजिक स्वरूप ही भक्ति है और साथ ही मैं कवि सूरदास की उन काव्यचेष्टाओं की भी कुछ सूचना दे चुका हूँ जिनमें उन्होंने इस समाज-व्यापिनी कृष्णभक्ति की नियोजना की है। इन्हीं चेष्टाओं के सर्वश्रेष्ठ अंग वे हैं जिन्हें उपर्युक्त आलोचक मानसिक विजृंभणा कहकर टाल देना चाहते हैं। पर इस प्रकार वे टाले नहीं जा सकेंगे। व्यक्त सौन्दर्य की जो अव्यक्त और निगूढ़ अंतर्गतियाँ कवि ने दिखाई हैं वे कृष्ण को रहस्यमय स्वरूप प्रदान करती हैं। इसी रहस्यमय स्वरूप से उपास्य कृष्ण की प्रतिष्ठा होती है। जो प्रेमप्रसंग व्यक्तिगत और बाह्य घटनाओं से प्रकट हैं उनका उपयोग भी क्रमशः अनिर्वचनीय, रहस्यमय, सामूहिक प्रेम (भक्ति) की अभिव्यक्ति के लिए ही होता है। सूरदास की यही मुख्य काव्यसाधना है।

ब्रज रहते, कृष्ण का जो प्रेम, गोपियों में इधर-उधर बिखरा था, अब उनके मथुरा जाने पर वह छनकर एकत्र हो रहा है। गोपियों के विरहगीतों में उसका समाजव्यापी स्वरूप धारण करना जारी है। मिलने के अवसर पर जो रहे-सहे भेद-भाव थे वे भी अब मिट गये हैं (जिन लोगों

ने यह शंका की है कि सूरसागर म सालह हज़ार गोपिका-सहचरियों से कृष्ण का प्रेम-सम्बन्ध क्यों दिखाया गया है? उन्हें ऊपर के उत्तर से समाधान कर लेना चाहिए)। प्रेमभावना अपना रहस्यमय सामाजिक स्वरूप धारण कर रही है।

और जब उद्धव निर्गुण का संदेश लाते हैं और गोपियाँ भ्रमर को सम्बोधित कर उन्हें मर्मस्पर्शी उत्तर देती हैं तब तो रहस्य खुल ही जाता है। गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म का तिरस्कार क्यों करती हैं? क्योंकि वे जिसकी प्रेमिका या उपासिका हैं वह निर्गुण से क्या कम है! निर्गुण से क्या कम सुन्दर है, क्या कम श्रेष्ठ है! जिसको योगी योग-द्वारा समाधि साधकर प्राप्त करते हैं उसे ही (नामान्तर से) गोपियों ने प्रेमपरिचर्या में प्राप्त किया है। क्यों वे इसे छोडकर उसे लें? क्या विशेषता है उसमें जो इसमें नहीं है? क्या रहस्य है उसमें जो इसमें नहीं है? जो विशेषण उसके साथ लगते हैं वे सब इसके साथ भी लगते हैं। यह कोई व्यक्ति कृष्ण नहीं; यह तो रहस्यमयी परमसत्ता, परम उपास्य ही कृष्ण है। और यहीं सूरदास जी की आरंभिक प्रतिज्ञा सार्थक हो जाती है—

> 'अविगत गति कछु कहत न आवै,
> सब विधि अगम विचारहि तातै सूर सगुन पद गावै।

अविज्ञात निर्गुण के समकक्ष विज्ञात सगुण कृष्ण के रहस्यमय पद सूरदास सुनाते हैं।

सूरदास की जीवनी

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध में अभी तक बहुत थोड़ी-सी बातें ज्ञात हो सकी हैं। कवि ने अपने कुछ पदों में अपने सम्बन्ध में थोड़े-से उल्लेख किये हैं। कुछ साम्प्रदायिक किंवदंतियाँ भी कवि के सम्बन्ध में चली आती हैं। इस अल्प सामग्री के आधार पर विद्वानों ने सूरदास की जीवनी का क्रम निश्चित करने का प्रयत्न किया है।

सूरदास की निश्चित जन्मतिथि ज्ञात नहीं है। उनकी रचनाओं में केवल साहित्य-लहरी की रचना-तिथि ज्ञात है। साहित्य-लहरी में एक पद आया है:—

मुनि सुनि रसन के रस लेख;
दसन गौरीनंद को लिखि सुवल संवत पेख।

काव्य-परिपाटी के अनुसार इस पद का यह अर्थ निकलता है कि साहित्य-लहरी की रचना [मुनि = ७, रसन (जिसमें रस नहीं) = ०, रस = ६, दसन गौरीनंद = १] संवत् १६०७ अथवा ई० १५५१ में हुई थी। विद्वानों का अनुमान है कि साहित्य-लहरी की रचना के समय कवि की अवस्था सरसठ वर्ष के आसपास थी। कवि ने अपनी एक अन्य रचना सूर-सारावली में एक जगह लिखा है :—

गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन।

सूर-सारावली और सूर-लहरी, दोनों ही ग्रंथों में सूरसागर में कूट-पदों का संग्रह है। इससे यह सम्भव है कि ये दोनों ग्रंथ सूरसागर के समाप्त होने के बाद लगभग एक ही साथ संकलित किये गये थे। इस तर्क के आधार पर विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि सूरदास का जन्म संवत् १५४० अथवा ई० १४८४ में हुआ था।

सूरदास की मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार से अनुमान लगाया गया है। यह किंवदंती है कि सूरदास ने अस्सी वर्ष की आयु पाई। यह किंवदंती असत्य नहीं मालूम पड़ती। सूरदास पुष्टिमार्ग

के संस्थापक वल्लभाचार्य (संवत् १५३५-१५८७) के शिष्य थे। सूरदास ने स्वयं लिखा है:—

श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायो।

वल्लभाचार्य के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ (संवत् १५७२-१६४२) उनकी गद्दी पर बैटे। विट्ठलनाथ ने अपने पिता के चार शिष्यों को और अपने चार शिष्यों को मिलाकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। सूरदास की गणना भी इन 'अष्टछाप' के कवियों में होती है। कवि ने स्वयं लिखा है:—

[थपि गुसांई करी मेरी आठ मद्धे छाप]

पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि सूरदास की मृत्यु के समय विटठलनाथ उपस्थित थे*। किवदंती को सत्य मानने पर सूरदास की मृत्यु-तिथि संवत् १६२० के आसपास ठहरती है। यह तिथि गलत नहीं मालूम पड़ती।

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख नाभादास-रचित भक्तमाल और चौरासी वैष्णवन की वार्ता में आये हैं। इन दोनों ग्रंथों से यह पता नही चलता कि सूरदास के माता-पिता का क्या नाम था, वे कहाँ रहने थे और उनकी क्या जाति थी ? जनश्रुति है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके माता-पिता ग़रीब ब्राह्मण थे। भिक्षा माँगकर अपना पेट भरते थे। परन्तु साहित्य-लहरी में जो पद † मिलता है, उसमें इससे बिलकुल विपरीत बात लिखी है :—

साहित्य-लहरी के इस पद के अनुसार सूरदास प्रसिद्ध हिंदी-कवि चंदबरदाई के वंश में उत्पन्न हुए थे। वे जाति के ब्रह्मभट्ट थे। वे सात भाई थे। सूरदास सबों में छोटे थे। उनके छः भाई मुसलमानों से युद्ध में मारे गये। एक बार अंधे सूरदास कुएँ में गिर पडे। तब श्रीकृष्ण ने अपने हाथों से उन्हे निकाला। इसके बाद सूरदास व्रज मे आकर श्रीकृष्ण का भजन करने लगे।

---

*'चौरासी वैष्णवन की वार्ता।'

† पद नम्बर ११८

बहुत-से विद्वान् इस पद को प्रक्षिप्त मानते हैं। इस पद में एक जगह लिखा है कि श्रीकृष्ण ने सूरदास को दर्शन देकर सब विद्याओं में निपुण होने का आशीर्वाद दिया और यह कहा—

प्रबल दच्छिन विप्रकुल तें सत्रु ह्वैहैं नास।

विद्वानों का कथन है कि इस पंक्ति में विप्रकुल से पेशवाओं की ओर संकेत है, जिन्होंने मुसलमानों को हराया। परंतु यह घटना सूरदास के कई शताब्दी बाद की है। अतः साहित्य-लहरी के इस संपूर्ण पद को प्रक्षिप्त मानना चाहिए।

परन्तु विद्वानों का दूसरा दल इस पद को अप्रामाणिक मानने का कोई कारण नहीं देखता। इस दल का यह कथन है कि इस पद की कुछ पंक्तियाँ आपत्तिपूर्ण हो सकती हैं। इधर कुछ विद्वानों ने यह तर्क किया है कि इस पद की जिन पंक्तियों पर आपत्ति की जाती है उनका ग़लत अर्थ लगाया गया है। यहाँ 'शत्रु' से तात्पर्य मुसलमानों से नहीं वरन् आत्मिक शत्रुओं से है। इस प्रकार विप्रकुल से संकेत दक्षिण के ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए वल्लभाचार्य से है, जिन्होंने अपने उपदेशों से आध्यात्मिक अज्ञान का नाश किया।

इस प्रकार अभी यह प्रश्न विवादपूर्ण है कि सूरदास भाट चंदबरदाई के वंश में उत्पन्न हुए थे अथवा भिक्षा-वृत्ति से पेट भरनेवाले एक ग़रीब सारस्वत ब्राह्मण के पुत्र थे ।

नाभादास के छप्पय से इतना ही प्रकट होता है कि सूरदास भगवद्-भक्त थे और अंधे थे।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के अनुसार सूरदास पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पहले स्वामी हो चुके थे। गऊघाट (आगरा और मथुरा के बीच) पर अपने शिष्यों के साथ रहते थे। एक बार वल्लभाचार्य मथुरा जाते हुए गऊघाट उतरे। सूरदास प्रसिद्ध गायक थे। उनकी प्रसिद्धि सुन वल्लभाचार्य ने उन्हें भगवत्‌चर्चा के लिए निमंत्रित किया। सूरदास ने वल्लभाचार्य के सामने कुछ विनय-पद गाये। वल्लभाचार्य सख्य-भक्ति के प्रचारक थे। उन्होंने सूरदास के दास-भक्ति के पदों को सुनकर कहा—'सूर ह्वै कें ऐसो घिघियात काहे को है।' सूरदास ने वल्लभाचार्य के पुष्टि-

मार्ग में दीक्षा ले ली। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद सूरदास का ृष्टिकोण बदल गया। वे गोवर्धन पर्वत पर रहने लगे। वल्लभाचार्य ने सूरदास की लगन देखकर उन्हें श्रीनाथ के मंदिर में कीर्त्तन करने का काम सौंप दिया। इस मंदिर में रहकर ही सूरदास ने अपने अधिकांश पदों की रचना की।

सूरदास के सम्बन्ध में कुछ जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें विद्वानों ने निराधार बताया है। यह किंवदंती है कि सूरदास अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गवैये बाबा रामदास के पुत्र थे और अपने पिता के साथ अकबर के दरबार में गाने जाया करते थे। विद्वानों का मत है कि ये सूरदास दूसरे थे, सूरसागर के रचयिता सूरदास नहीं। इसी प्रकार एक दूसरी किंवदंती यह है कि अकबर ने सूरदास को मिलने के लिए इलाहाबाद बुलाया। विद्वानों का मत है कि ये सूरदास भी कोई दूसरे सूरदास होंगे, सूरसागर के रचयिता सूरदास नहीं।

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध में एक बड़ा मनोरंजक वाद-विवाद इस विषय को लेकर हुआ है कि क्या सूरदास जन्म से अंधे थे, अथवा बाद में अंधे हो गये? सूरदास की रचनाओं में प्रकृति का और मनुष्य के भावों के उतार-चढ़ाव का जैसा सूक्ष्म चित्रण है, उसे देखकर यह कहने का साहस नहीं होता कि सूरदास ने बिना अपनी आँखों से देखे केवल कल्पना से यह सब लिखा है। अधिकांश विद्वानों का झुकाव इस मत की ओर है कि सूरदास जन्म से अंधे नहीं थे, बाद में अंधे हो गये। इस कथन की पुष्टि में सूरदास के ग्रंथों में कोई साक्ष्य नहीं मिलता। परन्तु चौरासी वैष्णवन की वार्ता में एक जगह लिखा है—

सूरदास जी श्री आचार्य्य जी महाप्रभून को दर्शन करि के आगे आय बैठे।

इन पंक्तियों से यह ध्वनि निकलती है कि सूरदास उस समय तक अंधे नहीं हुए थे, इसी लिए महाप्रभु के दर्शन कर, आगे बैठने की बात कही गई है।

सूरदास ने काफ़ी लम्बी उम्र पाई थी। उनकी मृत्यु ब्रज-प्रदेश के गाँव पारसोली में हुई।

प्रस्तावना

अबिगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगें मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।
परम स्वाद सबहीं सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कौ अगम अगोचर सो जानै जो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालंब मन धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन पद गावै ॥१॥

---

१. अबिगत = जो प्रकट नहीं है। जुगुति = युक्ति, उपाय।
अगम बिचारहिं = विचार में न आनेवाला।

बंदना

चरन कमल बंदौं हरि राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कौं सब कछु दरसाइ ।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय बार बार बंदौं तिहि पाइ ।। २ ।।

श्री कृष्ण-जन्म

कमल नयन ससि बदन मनोहर देखिअ हो पति अति बिचित्र गति।
स्याम सुभग तन पीत बसन दुति उर बाने सोहैं अद्भुत अति।
नव मनि मुकुट प्रभा अति उद्दित चितै चकित उनमान न आवति ।
अति प्रकास निसि बिमल तिमिर छुटि कर मलि मलि सो पतिहिं जगावति।
दरसन सुखी दुखी अति सोचति षटसुत सोक सुरति उर आवति ।
सूरदास प्रभु लेहु पराकृत भुज कै आकृत चिह्न दुरावति ।। ३ ।।

गोकुल-प्रस्थान

हो पिय सो उपाय कछु कीजै।
जेहि तेहि बिधि दुराइ यह बालक राखि कंस सौं लीजै।
मनसा बाचा कहत कर्मना नृपतिहि नाहिं पतीजै।
बुधि बल छल कल कैसैहूँ करि काढ़ि अनत लै दीजै।
नाहिंन इतनौ भाग जु यह रस नित लोचन पुट पीजै।
सुनहु सूर ऐसे सुत कौ मुख निरखि निरखि जग जीजै ।। ४ ।।

बाने = चिह्न। उनमान न आवति = निश्चय नहीं कर पाती।
सुरति = याद। लेहु पराकृत = प्राकृतिक रूप धारण करो ।
पतीजै = विश्वास करना चाहिए।

अँधियारी भादौं की राति।
बालक कौं बसुदेव देवकी पठै पठै पछिताति।
बीच नदी घन गरजत बरषत दामिनि कौंधनि जाति।
बैठत उठत सेज सौंवरि मैं कंस डरनि अकुलाति।
गोकुल बाजत सुनी बधाई लोगनि हेरि सिहाति।
सूरदास आनंद नंद कैं देत कनक नग दाति ॥ ५ ॥

देवताओं का हर्ष

आनंदै आनंद बढ़्यौ अति।
देवनि दिवि दुंदुभी बजाई सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
बिद्याधर किन्नरी कंठधर उपजावत अनुराग अमित अति।
गावत गगन धरनि धुनि सुनियत गरजत घन तेहिं काल जतन जति।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर जयजयकार करत मानत रति।
सिव बिरंचि इंद्रादि सनक मुनि फूले सुख न समात मुदित मति ॥ ६ ॥

गोकुल में प्रकट होना

गोकुल प्रगट भए हरि आइ।
अमर उधारन असुर सँहारन अंतरजामी त्रिभुवन राइ।
माथे पर धरि बसुदेव ल्याए नंद महर घर गए पहुँचाइ।
जागी महरि पुत्र मुख देखत पुलक अंग उर में न समाइ।
गदगद कंठ बोल नहिं आवै हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।
आवहु कंत देव परसन भए पुत्र भयौ मुख देखौ धाइ।
दौरि नंद गए, सुत मुख देख्यौ, सो सोभा सुख बरनि न जाइ।
सूरदास पहिलैं यह माँग्यौ दूध पियावन जसुमति माइ ॥ ७ ॥

---

५. सौंवरि = सौर; सूतिकागृह।
६. कंठधर = गायक। जतन जति = यत्न करके।
७. महर = ग्वालों की एक उपाधि।

गोकुल में प्रकट होना

जागी महरि पुत्र मुख देख्यौ आनँद तूर बजाइ।
कंचन कलस हेम द्विज पूजा चंदन भवन लिपाइ।
दिन दस ही तैं बरषे कुसुमनि फूलनि गोकुल छाइ।
नंद कहै इच्छा सब पूजी मन बांछित फल पाइ।
आनँद भरे करत कौतूहल उदित मुदित नर नारी।
निरभय भए निसान बजावत देत निसंकै गारी।
नाचत महर मुदित मन कीन्हे ग्वाल बजावत तारी।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे मथुरा-गर्ब-प्रहारी ॥ ८ ॥

आजु बन कोऊ वै जनि जाइ।
सबै गाइ बछरा समेत सब आनहु चित्र बनाइ।
ढोटा है. रे भयौ महरि कैं कहत सुनाइ सुनाइ।
सबहि घोष में भयौ कोलाहल आनँद उर न समाइ।
कत हौ गहर करत रे भैया बेगि चलौ उठि धाइ।
अपने अपने मन कौ चीत्यौ नैननि देखौ आइ।
एक फिरत दधि दूब बँधावत एक रहत गहि पाइ।
एक परसपर करत बधाई एक उठत हँसि गाइ।
तरुन किसोर बृद्ध अरु बालक बैठे चौगुनैं चाइ।
सूरदास सब प्रेम मगन भए गनत न राजा राइ ॥ ९ ॥

हौं एक बात नई सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायौ घर घर होति बधाई।
द्वारैं भीर गोप गोपिनि की महिमा बरनि न जाई।
अति आनंद होत गोकुल मैं रतन भूमि सब छाई।

---

८. तूर = तुरही; एक वाद्य। कौतूहल = कौतुक, खिलवाड़।
निसान = नगाड़े।

९. घोष = अहीरों की बस्ती। गहर = विलम्ब, देर। गनत न राजा राइ = किसी को कुछ समझते नहीं।

नाचत तरुन बृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुखसागर सुंदर स्याम कन्हाई ॥ १० ॥

सखी री काहेकौं गहरु लगावति ?
सुत कौ जनम जसोदा कैं गृह ता लगि तुमहिं बुलावति।
कनक थार भरि लै दधि रोचन बेगि चलौ मिलि गावनि।
साँचहुँ सुत भयौ नँदनायक कैं हौं नाहिन बौरावति।
आनँद उर अंचल न सँभारति सीस सुमन बरषावति।
सूरदास सोभा तेहिं अवसर जहाँ तहाँ तैं आवति ॥ ११ ॥

आजु नंद के द्वारैं भीर।
एक आवत एक जात बिदा ह्वै एक ठाढ़े मंदिर कैं तीर।
कोउ केसर को तिलक बनावत कोऊ पहिरत कंचुकि चीर।
एकनि कौं दै दान समरपत एकनि कौं पहिरावत चीर।
एकनि कौं भूषन पाटंबर एकनि कौं जु देत नग हीर।
एकनि कौं पुहुपनि की माला एकनि कौं चंदन घसि नीर।
एकनि कौं तुलसी की माला एकनि कौं राखत दै धीर।
सूर स्याम घनस्याम सनेही धन्य जसोदा पुन्य सरीर ॥ १२ ॥

सोभा सिंधु न अंत रही री।
नंद भवन भरि पूरि उमँगि चलि ब्रज की बीथिनि फिरति बही री।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं घर घर बेंचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि कहत न मुख सहसहुँ निबही री।

---

११. बौरावति = पागल बनाना, धोखा देना। जहाँ तहाँ तैं = चारों ओर से।

१२. मंदिर = घर। पहिरावत चीर = वस्त्र दान करते हैं। राखत दै धीर = सब बँधाते हैं।

१३. बीथिनि = गलियों में। निबही = पूरी हुई।

जसुमति उदर अगाध उदधि तैं उपजी ऐसी सबनि कही री।
सूर स्याम प्रभु इंद्रनील मनि ब्रजबनिता उर लाइ गुही री ॥१३॥

आजु तौ बधाई बाजै मंदिर महर के।
फूले फिरैं गोपी ग्वाल ठहर ठहर के ॥
फूली धेनु फूले धाम फूली गोपी अंग अंग फूले फरे तरुबर आनँद लहर के।
फूले बंदीजन द्वारे फूले जु बँदनवारे फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल सहर के।
फूले फिरैं जादौकुल आनँद समूल मूल अंकुरित पुन्य फूले पिछले पहर के।
उमँगे जमुना-जल प्रफुलित कंज पुंज गरजत कारे भारे जूथ जलधर के।
नृत्यत मदन फूले फूली रति अंग अंग मन के मनोज फूले हिय हलधर के।
फूले द्विज संत बेद मिटि गयौ कंस खेद गावत बधाई सूर भीतर बहर के।
फूली है जसोदा रानी सुत जायौ सार्ङपानी भूपति उदार फूले भाग फरे घर के ॥ १४ ॥

पालने पर झूलना

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निदरिया काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं न बेगि सी आवै तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि करि करि सैन बतावै।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै ॥ १५ ॥

---

१३. इंद्रनील = नीलम। गुही = गूँथा है।
१४. ठहर ठहर = स्थान स्थान। जोइ सोइ = सभी। पिछले पहर के = पूर्व समय के। मन के मनोज = हृदय की इच्छायें।
१५. मल्हावै = चुमकारती है। जोइ सोइ = जो मन में आया। मधुर = धीरे धीरे।

पालने स्याम हुलावति जननी ।
अति अनुराग परसपर गावति प्रफुलित मगन मुदित नँदघरनी।
उमँगि उमँगि प्रभु भुजा पसारत हरषि जसोमनि अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा पूरन भई पुरातन करनी ॥ १६ ॥

हरषे नंद टेरत महरि ।
आइ सुत मुख देखि आतुर डारि दै दधि डहरि।
मथति दधि जसुमति मथानी धुनि रही घर गहरि ।
स्रवन सुनति न महरि बातैं जहाँ तहँ गइ चहरि ।
यह सुनत तब मातु धाई गिरे जाने झहरि ।
हँसत नँद मुख देखि धीरज तब कह्यौ ज्यौं ठहरि।
स्याम उलटे परे देखे बढ़ी सोभा लहरि।
सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि ॥ १७ ॥

पालने पर उलटना

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।
चिरु जीवौ मेरौ लाडिलौ मैं भई सभागी।
एक पाख त्रैमास कौ मेरौ भयौ कन्हाई।
पट करानि उलटे परे मैं करौं बधाई।
नंदघरनि आनँद भरी बोलीं ब्रजनारी ।
यह सुख सुनि आईं सबै सूरज बलिहारी ॥ १८ ॥

---

१६. अंकम = गोद। पुरातन करनी = पिछले कर्म।
१७. टेरत = बुलाते हैं। डहरि = घड़ा, मटका। चहरि = आवाज।
ज्यौं ठहरि = धैर्य धारण करके।
१८. पट करानि = हाथों के बल ।

माता की साध

नंदघरनि आनँद भरी सुत स्याम खिलावै।
कबहुँ घुटुरवनि चलहिंगे कहि बिधिहिं मनावै।
कबहुँ दतुलि द्वै दूध की देखौं इन नैननि।
कबहुँ कमल-मुख बोलिहैं सुनिहौं उन बैननि।
चूमति कर पग अधर मुख लटकति लट चूमति।
कहा बरनि सूरज कहै कहँ पावै सो मति ॥१९॥

सुत मुख देखि जसोदा फूली ।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेम मगन तन की सुधि भूली।
बाहिर तैं तब नंद बुलाए देखौ धौं सुंदर सुखदाइ ।
तनक तनक-सी दूध की दँतियाँ देखौ नैन सुफल करौ आइ ।
आनँद सहित महर तब आए मुख चितवत दोउ नैन अघाइ ।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ मनौ कमल पर बीजु जमाइ ॥२०॥

अन्नप्राशन

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि कंचन के थार भराए भाँति भाँति के बासन।
नंद घरनि सब बधू बुलाई जे जे अपनी जाति ।
कोउ जिवनार करति कोउ घृतपक षटरस के बहु भाँति।
बहुत प्रकार किए सब ब्यंजन बरन बरन मिष्टान।
अति उज्ज्वल कोमल सुठि सुंदर महरि देखि मन मान।

---

१९. घुटुरवनि = घुटने के सहारे।
२०. द्विज = दाँत। बीजु = विद्युत्। जमाइ = जड़ी हुई है।
२१. बासन = बर्तन । जिवनार = रसोई ।

जसुमति नंदहिं बोलि कह्यौ तब महर बुलावहु पाँति।
आपु गए नँद सकल महर घर लै आए सब ग्याति।
आदर करि बैठाइ सबनि कौं भीतर गए नँदराइ।
जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौं पटभूषन पहिराइ।
तन झिँगुली सिर लाल चौतनी कर चूरा दुहुँ पाइ।
बार बार मुख निरखि जसोदा पुनि पुनि लेति बलाइ।
घरी जानि सुत मुख जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
महर बोलि बैठारि मंडली आनँद करत बिनोद।
कनक थार लै खीर धरी भरि तापर घृत मधु नाइ।
नँद लै लै हरि मुख जुठरावत नारि उठी सब गाइ।
षटरस के परकार जहाँ लगि लै लै अधर छुवावत।
बिस्वंभर जगदीस जगतगुरु परसत मुख करुवावत।
तनक तनक जल अधर पोंछि कै जसुमति पै पहुँचाए।
हरषवंत जुवती सब लै लै मुख चूमतिं उर लाए।
महर गोप सबही मिलि बैठे पनवारे परुसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी जो जेहिकैं मन भाए।
इहिं बिधि सुख बिलसत ब्रजबासी धनि गोकुल नर नारी।
नंद सुवन की या छबि ऊपर सूरदास बलिहारी॥२१॥

हरि कौ मुख माइ मोहिं अनुदिन अति भावै।
चितवत चित नैननि की मति गति बिसरावै।

---

२१. पाँनि = पंगत। ग्याति = जाति के लोग। उबटि = उबटन लगाकर। झिँगुली = कुर्ता। चौतनी = बंद या बटन लगी हुई टोपी। चूरा = चूड़ा या कंकण जो हाथ में पहनते हैं। पैरों में पहनने का भी एक आभूषण, कड़ा। करुवावत = कड़ुवा लगने की मुखाकृति। पनवारे = पत्तल जिनमें खाद्य पदार्थ परोसते हैं

ललना लै लै उछंग अधिक लोभ लागैं।
निरखतिं निंदतिं निमेष करत ओट आगैं।
सोभित सु कपोल अधर अल्प अल्प दसना।
किलकि किलकि बैन कहत मोहन मृदु रसना।
नासा लोचन बिसाल संतत सुखकारी।
सूरदास धन्य भाग देखतिं ब्रज-नारी ।।२२।।

बर्षगाँठ

आजु भोर तमचुर की रोल।
गोकुल में आनंद होत है मंगल धुनि महरानैं टोल ।
फूले फिरत नंद अति सुख भयौ हरषि मँगावत फूल तमोल ।
फूली फिरति जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल ।
तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछति पट झोल।
कान्ह गरैं सोहै कँठमाला अंग अभूषन अँगुरिनि गोल ।
सिर चौतनी डिठौना दीन्हे आँखि आँजि पहिराइ निचोल ।
स्याम करत माता सौं झगरौ अटपटात कलबल कर बोल ।
दोउ कपोल गहि कै मुख चूमति बरष दिवस कहि करति कलोल ।
सूर स्याम ब्रज जन मन मोहन बरषगाँठि कौ डोरा खोल ।।२३।।

---

२२. उछंग = गोद । निमेष = पलक लेना । ओट आगैं = सामने से छिपाना । नासा = नाक ।

२३. तमचुर की रोल = मुर्गों की ध्वनि । महरानैं टोल = अहीरों के टोले या मुहल्ले में । तमोल = पान । झोल = वस्त्र, अँगोछा । निचोल = वस्त्र । डोरा खोल = कमर में बाँधा गया डोरा खोलती है, नया पहनाती है ।

घुटनों चलना

घुटुरुन चलत स्याम मनि आँगन मातु पिता दोउ देखत री।
कबहुँक किलकिलात मुख हेरत कबहुँ जननि मुख पेखत री।
लटकन लटकत ललित भाल पर काजर बिंदु भ्रू ऊपर री।
यह सोभा नैननि भरि देखैं नहिं उपमा तिहुँ भू पर री।
कबहुँक दौरि घुटुरुवन लटकत गिरत परत फिरि धावत री।
इततैं नंद बुलाइ लेत हैं उततैं जननि बुलावत री।
दंपनि होड़ करत आपुस में स्याम खिलौना कीन्हौ री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हित करि दोउ लीन्हौ री॥२४॥

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनौ मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिए।
कठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल यह सुख का सत कल्प जिए॥२५॥

हरि जू की बाल छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा हरनि।

---

२४. मुख हेरत = मुख देखकर। सुत हित करि = पुत्र समझकर।
२५. नवनीत = मक्खन। रेनु = धूलि। लोल = चंचल। गोरोचन = पीले रंग का एक सुगंधित द्रव्य। लट लटकनि = सिर की लटों का लटकना। कठुला = सोने की माला जो बच्चों को पहनाते हैं। बज्र = हीरा। केहरि नख = एक नखाकृति आभूषण।
२६. सींव = सीमा। मनोज = कामदेव।

भुज भुजंग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि।
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि।
मनौं सुभग सिंगार सिसु तरु फरचौ अदभुत फरनि।
चलत पद प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि करनि।
जलज-संपुट सुभग छबि भरि लेति उर जनु धरनि।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद घरनि।
सूर प्रभु की बसी उर किलकनि मधुर लरखरनि ।।२६।।

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन मुख प्रतिबिंब पकरिबैं धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक भूमि पर कर-पग-छाया यह उपमा एक राजति।
करि करि प्रति पद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजति।
बाल दसा सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नंद बुलावति।
अँचरा तर लै ढाँकि सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ।।२७।।

---

२६. भुज. . . . लरनि = भुजाओं ने साँप को, नेत्रों ने कमल को और मुख ने चन्द्रमा को लड़ाई (होड़, तुलना) में जीत लिया। रहे. . . डरनि = तब वे विवर में, जल में और आकाश में भाग गये तथा अन्य उपमाएँ डर के मारे छिप रहीं। मंजु = सुन्दर। मेचक = कृष्ण वर्ण। अनुहरत = अच्छी लगनेवाली। चलत. . . धरनि = घुटुरुओं चलने से पैरों का प्रतिबिंब मणियुक्त आँगन में पड़ता है। मानों पृथ्वी कमलों का संपुट (पात्र) बनाकर उस सुन्दर छवि को भर लेती और हृदय से लगाती है।

२७. अवगाहत = ढूँढ़ते हैं, पता लगाते हैं, छानबीन करते हैं। कनक. . . .साजति = सोने के आँगन में कृष्ण के हाथों और पैरों की छाया पड़ती है। मानो पृथ्वी प्रत्येक चरण को (पूजनीय) प्रतिमा बनाकर उनके लिए कमलासन सजाती है। (कृष्ण के चरण प्रतिमा हैं और उनकी छाया जो आँगन में पड़ती है वही कमलासन है)

नंद धाम खेलत हरि डोलत ।
जसुमति करति रसोईं भीतर आपुन किलकत बोलत ।
टेरि उठी जसुमति मोहन कौं आवहु घुटुरुनि धाइ ।
बैन सुनत माता पहिचानी चले घुटुरुवनि पाइ ।
लै उठाइ अंचल गहि पोंछे धूरि भरी सब देह ।
सूरज प्रभु जसुमति रज झारति कहाँ भरी यह खेह ? २८॥

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावति डगमगाइ धरनी धरै पैया ।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति उर आनँद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
कबहुँक कुल देवता मनावति चिरु जीवौ मेरौ बाल कन्हैया ।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नँदरैया ॥२९॥

आँगन खेलैं नंद के नंदा । जदुकुल-कुमुद सुखद चारु चंदा ।
संग संग बल मोहन सोहैं । सिसु भूषन सब कौ मन मोहैं ।
तन दुति मोर चंद्र जिमि झलकै । उमँगि उमँगि अँग अँग छबि छलकै ।
कटि किंकिन पग नूपुर बाजै । पंकज पानि पहुँचिया राजै ।
कठुला कंठ बघनहा नीके । नयन सरोज मयन सरसी के ।
लटकन ललित ललाट लटूरी । दमकति द्वै द्वै दँतियाँ रूरी ।
मुनि मन हरत मंजु मसि बिंदा । ललित बदन बल बाल गोबिंदा ।

---

२८. खेह = धूल ।

२९. अरबराइ . . . गहावति = चलने में लटपटाते हैं तब माता हाथ पकड़ाती है ।

३०. मयन . . . सरसी के = नेत्र मानो काम सरोवर के कमल हैं । लटूरी = बालों की लट । रूरी = सुन्दर । मसि बिंदा = माथे पर लगा हुआ काजल-बिंदु ।

कुलही चित्र विचित्र झँगूली। निरखि जसोदा रोहिनि फूली।
गहि गनि खंभ डिंभ डग डोलैं। कलबल बचन तोतरे बोलैं।
निरखत छवि झाँकत प्रतिबिंबैं। देत परम सुख पितु अरु अंबैं।
ब्रजजन देखत हिय हुलसानै। सूर स्याम महिमा को जानै ॥३०॥

गहे अँगुरियां तात की नँद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत।
बार बार बकि स्याम सौं कछु बोल बकावत।
दुहुँघा द्वै दँतुली भईं अति मुख छबि पावत।
कबहुँ कान्ह कर छाँड़ि नँद पग द्वैक रिंगावत।
कबहुँ धरनि पर बैठि कै मन मैं कछु गावत।
कबहुँ उलटि चलैं धाम कौं घुटुरुनि करि धावत।
सूर स्याम मुख देखि महर मन हरष बढ़ावत ॥३१॥

कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मन मैं अभिलाष करत ही सो देखति नँद घरनी।
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग धुनि अति ही मन हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरत ही सो छबि जाइ न बरनी।
ब्रज जुवती सब देखि थकित भईं सुंदरता की सरनी।
चिरु जीवौ जसुदा कौ नंदन सूरदास कौं तरनी ॥३२॥

आँगन स्याम नचावई जसुमति नँदरानी।
तारी दै दै गावई मधुरी मृदु बानी।

---

३०. कुलही = कनटोप। डिंभ = बहुत छोटे बच्चे। कलबल = अस्पष्ट।
३१. दुहुँवा = ऊपर नीचे, दोनों ओर। रिंगावत = रेंगाते, चलाते हैं।
३२. सरनी = मार्ग। तरनी = पार ले जानेवाली नौका।

पायनि नूपुर बाजई कटि किंकिनि कूजै।
नन्हीं एड़ियन अरुनता फलबिंब न पूजै।
जसुमति गान स्रवन सुनि तब आपु न गावै।
तारी बजावत देखई पुनि तारी बजावै।
केहरि नख उर पर सुभग सुठि सोभाकारी।
मनौं स्याम घन मध्य में नव ससि उजियारी।
गभुआरे सिर केस हैं ते बाँधि सँवारे।
लटकन लटकैं भाल पर बिधु मधि गन तारे।
कठुला कंठ चिबुक तरें मुख हसनि बिराजै।
खंज मीन सुक आनि कै मनो परे दुराजै।
जसुमति सुतहि नचावई छबि देखति जिय तें।
सूरदास प्रभु स्याम के मुख टरत न हिय तें॥३३॥

गोपियों का हर्ष

जसोदा तेरौ चिरु जीवहु गोपाल।
बेगि बढ़ौ बल सहित बृद्ध लट महरि मनोहर बाल।
उपजि पर्‍यो इहि कोख करमवश सुँदी सीप ज्यौं लाल।
या गोकुल के प्रान सजीवन बैरिनि के उर साल।
सूर कितौ मन सुख पावत है देखे स्याम तमाल।
रुज आरति लागौ मेरी अँखियनि रोग दोष जंजाल॥३४॥

---

३३. कूजै = ध्वनित होना। फलबिंब = बिंबा-फल। पूजै = पाना। गभुआरे = मुंडन के पूर्व के, गर्भ के। मधि = मध्य, बीच में। चिबुक = ठोढ़ी। दुराजै = असमंजस में। टरत = टलना, दूर होना।

३४. बृद्ध लट = सफ़ेद बाल हों; दीर्घ जीवी हो। मूँदी... लाल = सीपी के खुलने पर जैसे रत्न निकल पड़े। उर साल = हृदय में शल्य की तरह चुभनेवाले। रुज आरति = रोग-भय। लागौ मेरी अँखियनि = मेरी आँखों को लगे, मुझे लगे।

माखन-प्रसंग

गोपाल राइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी जननी सुपक सुमंगल मोटी।
कत हौ आरि करत मेरे मोहन कहत जु आँगन लोटी।
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर यहै बात तेरी खोटी।
प्रातकाल उठि देउँ कलेऊ बदन चुपरि अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ो हाथ लकुट लिऐं छोटी ॥३५॥

नैंकु रहौ माखन दचौं तुमकौं।
ठाढ़ी मथनि जननि दधि आतुर लवनी नंद सुअन कौं।
मैं बलि जाउँ स्यामघन सुंदर भूख लगी तुम्हैं भारी।
बात कहूँ की बूझति स्यामहिं फेर करति महतारी।
कहत बात हरि कछु न समझत झूठैं देत हुँकारी।
सूरदास प्रभु के गुन गावत बिसरि गई नँद नारी ॥३६॥

चंद्र-प्रस्ताव

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं हरिहिं लिए चंदा दिखरावति।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी देखौ धौं भरि नयन जुड़ावत।
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपनैं कर लै लै जु बतावत।
मीठौ लगत किधौं यह खाटौ देखत अति सुंदर मन भावत।
मन मन हीं हरि बुद्धि करत हैं माता कौं कहि ताहि सुनावत।
लागी भूख चंद मैं खैहौं देहु देहु रिस करि बिरुझावत।
जसुमति कहति कहा मैं कीन्हौं रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर स्याम कौं जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उड़त लखावति ॥३७॥

---

३५. आरि = झगड़ा।
३६. लवनी = मक्खन। फेर करति = बातों में बहलाती है।
३७. बिरुझावत = मचलते हैं। बोधति = मनाती है।

बार बार जसुदा सुत सोधति आउ चंद तोहिं लाल बुलावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई आपुन खैहै तोहिं खवावै।
हाथहि पर तोहिं लीन्हे खेलै नहिं कबहूँ धरनी बैठावै।
जलभाजन कर लै जु उठावति या ही मैं तनु धरि तू आवै।
जलपुट आनि धरनि पर राख्यौ गहि आन्यौ वह चंद दिखावै।
सूरदास प्रभु हँसि मुसकाने बार बार दोऊ कर नावैं ॥३८॥

तुव मुख देखि डरत ससि भारी।
कर करिकै हरि हेर्‌यौ चाहत भाजि पताल गयौ अपहारी।
वह ससि तौ कैसेहुँ नहिं आवत इहिं ऐसी कछु बुद्धि बिचारी।
बदन देखि बिधु बुधि सकात मन नैन कंज कुंडल उजियारी।
सुनहु स्याम तुमकौं ससि डरपत यहै कहत हौं सरन तुम्हारी।
सूर स्याम विरुझाने सोए लिए लगाइ छतियाँ महतारी ॥३९॥

शयन

जसुमति लै पलिका पौढ़ावति।
मेरौ आज अतिहिं बिरुझानौ यह कहि कहि मधुरे सुर गावति।
पौढ़ि गई तब हरुए करि कै अंग मोरि तब हरि जमुहाने।
कर सौं ठोंकि सुतहि दुलरावति चटपटाइ बैठे अतुराने।
पौढ़ौ लाल कथा एक कहिहौं अति मीठी स्रवननि कौं प्यारी।
वह सुनि सूर स्याम मन हरषे पौढ़ि गये हँसि देत हुँकारी ॥४०॥

प्रातः उठना

माहिनैं जगाइ सकति सुनि सुो बात सजनी।
अपने जान अजहुँ कान्ह मानत हैं रजनी।

---

३८. जलपुट = जल का पात्र। नावैं = डालते हैं।
३९. अपहारी = छिप गया। सकात = डरता है।
४०. हरुए करि कै = आहिस्ते से।
४१. मानत हैं रजनी = रात समझ रहे हैं।

जब जब हौं निकट जानि रहति लागि लोभा।
तनु की गति बिसरि जानि निरखत मुख सोभा।
बचननि कौं बहुत करति सोचति जिय ठाढ़ी।
नाहिनें बिचार परनि देखत रुचि बाढ़ी।
इहिं विधि बदनारविंद जसुमति मन भावै।
सूरदास सुख की रासि कहत न बनि आवै ॥४१॥

जागिए ब्रजराज-कुंवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद बृंद सँकुचित भए भृंग लता भूले।
तमचुर खग रोर सुनहु बोलत बनराई।
राँभति गौ खरिकनि में बछरा हित धाई।
बिधु मलीन रबि प्रकास गावत नर नारी।
सूर स्याम प्रात उठौ अंबुज कर धारी ॥४२॥

कलेऊ

उठिए स्याम कलेऊ कीजै।
मनमोहन मुख निरखत जीजै।
खारिक दाख खोपरा खीरा।
केरा आम ऊख रस सीरा।
स्रीफल मधुर चिरौंजी आनी।
सफरी चिउरा अरुन खुबानी।

---

४१ रहति लागि लोभा = लुब्ध हो रहती हूँ।

४२. खरिकनि = गायों के रहने और दुहे जाने का स्थान। अंबुज कर धारी = हाथ में कमल धारण करके।

४३. खारिक = छुहारा। दाख = किशमिश। खोपरा = गरी। सीरा = चाशनी। अरुन खुबानी = एक मेवा, जर्दालू।

घेवर फेनी खीर सुहारी ।
खोवा सहित खाउ बलिहारी ।
रचि पिराक लाडू दधि आनौं ।
तुमकौं भावत पुरी सँधानौं ।
तब तमोर रुचि तुमहिं खवावौं ।
सूरदास पनवारौ पावौं ॥४३॥

कमलनयन हरि करौ कलेवा ।
माखन रोटी सद्य जम्यौ दधि भाँति भाँति के मेवा ।
खारिक दाख चिरौंजी किसमिस मिसिरी गरी बदाम ।
सफरी सेव छुहारे पिस्ता जे तरबूजा नाम ।
अरु मेवा बहु भाँति भाँति के षटरस के मिष्टान ।
सूरदास प्रभु करत कलेऊ रीझे स्याम सुजान ॥४४॥

क्रीड़ा कौतुक

खेलत स्याम ग्वालनि संग ।
सुबल हलधर अरु सुदामा करत नाना रंग ।
हाथ तारी देत भाजत सबै करि करि होड़ ।
बरजै हलधर स्याम तुम जनि चोट लगिहै गोड़ ।
तब कह्यौ मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात ।
मेरी जोरी है सुदामा हाथ मारे जात ।

---

४३. घेवर = घी की बनी टिकिया के आकार की मिठाई । फेनी = सूत के लच्छे के आकार की एक मिठाई जो दूध में भी पड़ती है । पिराक = गोझिया । पनवारो = (जूठी) पत्तल ।

४४. सद्य = ताजा ।

४५. गोड़ = पैर । हाथ मारे जात = बाजी लगाकर दौड़ना ।

तबै बोलि उठे सुदामा जाहु तारी मारि।
आगें हरि पाछें सुदामा धरचौ स्याम हँकारि।
जानि कै मैं रह्यौ ठाढ़ौ छुवत कहा जु मोहि।
सूर हरि खीझत सखा सौं मनहिं कीन्हौ कोह ॥४५॥

सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहि आप ललकि भए ठाढ़े अब तुम कहा रिसाने।
बीचहि बोलि उठे हलधर तब इनकैं माइ न बाप।
हारि जीति कछु नैंकु न जानत लरिकनि लावत पाप।
आपुन हारि सखा सौं झगरत यह कहि दिए पठाइ।
सूर स्याम उठि चले रोइ कै जननी पूछति धाइ ॥४६॥

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ तू जसुमति कब जायौ।
कहा कहौं इहि रिस कैं मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरौ तात।
गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर।
तू मोही कौं मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन कौ मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मो गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥४७॥

---

४५. तारी मारि = हाथ मारना। धरचौ स्याम हँकारि = श्याम को बदकर पकड़ा।
४६. खिसाने = खिसियाना, लज्जित होना। पाप = दोष।
४७. खिझायौ = तंग किया, चिढ़ाया। खीझै = क्रोध करना, डाटना। चबाई = पर-निंदक, बदनामी फैलानेवाला। सौं = शपथ।

खेलन अब मेरी जाइ बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया।
मोसौं कहत तात बसुदेव कौ देवकी तेरी मैया।
मोल लियौ कछु दै बसुदेव कौं करि करि जतन बढ़ैया।
अब बाबा कहि कहत नंद सौं जसुमति सौं कहै मैया।
ऐसैंहि कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलौं खिसैया।
पाछैं नंद सुनत हे ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया।
सूर नंद बलरामहिं धिरयौ सुनि मन हरष कन्हैया ॥४८॥

खेलन चलिए बाल गोबिंद
सखा प्रिय द्वारें बुलावत घोष बालक बृंद।
तृषित हैं सब दरस कारन चतुर चातक दास।
बरषि छवि नव बारिधरही हरहु लोचन प्यास।
बिनय बचन सुने कृपानिधि चले मनोहर चाल।
ललित लघु लघु चरन कर उर बाहु नयन बिसाल।
अजिर पद प्रतिबिंब राजत चलत उपमा पुंज।
प्रति चरन मनौ हेम बसुधा देति आसन कंज।
सूर प्रभु की निरखि सोभा रहे सुर अवलोकि।
सरद चंद चकोर मानौ रहे थकित बिलोकि ॥४९॥

नंद बुलावत हैं गोपाल।
आवहु बेगि बलैया लेहौं सुंदर नैन बिसाल।

---

४८. मेरी जाइ बलैया = मेरी बलाय जाय; मैं नहीं जाऊँगा। जतन बढ़ैया = सिफ़ारिश करके। धिरयौ-धमकी दी।

४९. अजिर....कंज = आँगन में कृष्ण के पैरों का प्रतिबिंब इस प्रकार शोभित होता है मानो सोने की पृथ्वी प्रत्येक चरण के लिए कमल का आसन देती है। देखिए पद २७।

परस्यौ थार धर्‍यौ मग चिनवत बेगि चलौ तुम लाल।
भात सिरात तात दुख पावत क्यौं न चलौ ततकाल।
हौं बलि जाऊँ नान्हे पायन की दौरि दिखावहु बाल।
छाँड़ि देहु तुम ललित अटपटी यह गति मंद मराल।
सो राजा जो आगम दौरै सूर सु भौन उताल।
जौ जैहै बलदेव पहिलैं ही तौ हँसिहैं सब ग्वाल ॥५०॥

जेंवत कान्ह नंद इकठौरे।
कछुक खात लपटात दुहूँ कर बालक हैं अति भोरे।
बड़ो कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टकटोरे।
तीछन लगी नयन भरि आए रोवत बाहर दौरे।
फूँकनि बदन रोहिनी ठाढ़ी लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम कौं मधुर कौर दै कीन्हे तात निहोरे ॥५१॥

जेंवत स्याम नंद की कनियां।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छबि निरखति नँदरनियां।
बरी बरा बेसन बहु भाँतिन ब्यंजन बिबिध अगनियां।
डारत खात लेत अपनैं कर रुचि मानत दधिदनियां।
मिसिरी दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छबि धनियां।
आपुन खात नंद मुख नावत सो सुख कहत न बनियां।
जो रस नंद जसोदा बिलसत सो नहिं तिहूँ भुवनियां।
भोजन करि नँद अचवन कीन्ह्यौ मांगत सूर जुठनियां ॥५२॥

---

५०. मग चिनवन = रास्ता देखते हैं, प्रतीक्षा करते हैं। मंद मराल = हंस की-सी मंद चाल। आगम = आगे आगे। उताल = शीघ्रता में।

५१. इकठौरे = इकट्ठे, एक साथ। टकटोरे = दाँतों से काटना। तीछन = कड़वा। अँकोरे = गोद। तात निहोरे = पिता ने निहोरा किया; मनाया।

५२. दधिदनिया = दधि का दान लेनेवाले (कृष्ण का एक नाम)।

हरि तब आपनि आंखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छपाने जहँ तहँ गए भगाई।
कान लागि कह्यौ जननी जसोदा वा घर मैं बलराम।
बलदाऊ कौं आवन दैहौं स्रीदामा सौं काम।
दौरि दौरि कै बालक आवत छुवत महरि के गात।
सब आए रहे सुबल स्रीदामा हारे अबकैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए गहे स्रीदामा धाइ।
दै दै सौहैं नंद बबा की जननी पै लै आइ।
हँसि हँसि तारी देत सखा सब भए स्रीदामा चोर।
सूरदास हँसि कहति जसोदा जीत्यौ है सुत मोर ।।५३।।

ब्यालू करना

चलौ लाल कछु करौ बियारी।
रुचि नाहीं काहू पर मेरैं तू कहि भोजन करौं कहा री।
बेसन मिलै उरस मैदा सौं अति कोमल पूरी हैं भारी।
जे बहु स्याम मोहि सुख दीजै तातैं करी जु तुमहिं पियारी।
निबुआ चूरन आम सँधान्यौ और करौंदनि की रुचि न्यारी।
बार बार तू कहति जसोदा कहि ल्यावै रोहिनि महतारी।
जननी सुनत तुरत लै आई तनक तनक धरि कंचन थारी।
सूर स्याम कछु कछु लै खायौ जल अँचयौ पुनि बदन पखारी ।।५४।।

बछा खेलना

खेलत बनै घोष निकास।
सुनहु स्याम चतुर सिरोमनि इहाँ है घर पास।

---

५३. सोर पारि = आवाज देकर।

५४. बियारी = ब्यालू, रात्रि का भोजन। उरस मैदा = बढ़िया, सूखा हुआ मैदा। भारी = भरी (कचौरी) सँधान्यौ = बनाया है; परोसा है। पखारी = प्रक्षालन करके, पखारकर।

५५. घोष निकास = गाँव के बाहर।

कान्ह हलधर बीर दोऊ भुजा बल अति जोर।
सुबल स्रीदामा सुदामा वै भए इक ओर।
और सखा बँटाइ लीन्हे गोप बालक बृंद।
चले ब्रज की खोरि खेलन अति उमँग नँद नंद।
सखा जीतत स्याम जाने तब करी कछु पेल।
सूर तब भाषत सुदामा कौन ऐसौ खेल ॥५५॥

खेलत मैं को का कौ गुसैयां।
हरि हारे जीते स्रीदामा बरबस हीं कत करत रुसैयां।
जाति पाँति तुमतैं कछु नाहिँन नाहिँन बसत तुम्हारी छैयां।
अति अधिकार जनावत यातैं अधिक तुम्हारैं हैं कछु गैयां।
रुहठि करै तासौं को खेलै रहे पौढ़ि जहँ-तहँ सब ग्वैयां।
सूरदास प्रभु खेलोइ चाहत दाँव दियौ करि नंद दोहैयां ॥५६॥

आवहु कान्ह साँझ की बेरियां।
गाइनि माँझ भए हौ ठाढ़े कहति जननि यह बड़ी कुबेरिया।
लरिकाई कहुँ नैंकु न छाँड़त सोइ रहौ सुथरी सेजरियां।
आए हरि यह बात सुनत हीं धाइ लिए जसुमति महतरियां।
लै पौढ़ी आँगन ही सुत कौं छिटकि रही आछी उजियरियां।
सूरदास कछु कहत कहत हीं बस करि लिए आइ नींदरियां ॥५७॥

---

५५. खोरि = गली। पेल = बेईमानी।

५६. गोसैया = मालिक। रुसैयां = बेईमानी। छैयां = छाँह में, आश्रय में। रुहठि करै = झूठी बात पर अड़े, खेल में झूठा आरोप लगा कर रूठे। ग्वैया = साथी।

५७. सुथरी सेजरियां = साफ़, स्वच्छ शय्या पर। छिटकि... उजियरियां = सुन्दर चाँदनी छिटक रही है। नींदरियां = निद्रा, नींद।

साँटी-प्रसंग

कहत नंद जसुमति सुनु बारी।
ना जानिऐ कहां तैं देख्यौ मेरे कान्हहिं लावति खोरी।
पांच बरष कौ मेरौ कन्हैया अचरज तेरी बात।
बिनहीं काज साटि लै धावति ता पाछैं बिललात।
कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ खेलत खात अन्हात।
सूर स्याम कौं कहा लगावति बालक कोमल गात ॥५८॥

गोपालराइ इन्ह चरननि हौं काँटी।
हम अबला रिस बाँचि न जानी बहुत लागि गइ साँटी।
वारौं कर जु कठिन अति कोमल जरहु नयन जिन डाटी।
मधु मेवा पकवान छाँड़िकै काहैं खात तुम माटी।
सिगरोइ दूध पियौ मेरे मोहन बलहिं देहु जनि बाँटी।
सूरदास नँद लेहु दोहिनी दुहहु लाल की नाटी ॥५९॥

माखन-चोरी

प्रथम करी हरि माखन चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन आपु भजे हरि ब्रज की खोरी।
मन मैं इहै बिचार करत हरि ब्रज घर घर सब गाउं।
गोकुल जनम लियौ सुख कारन सब कर माखन खाउं।
बाल रूप जसुमति मोहिं जानै गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं घेरौ रे ब्रज लोग ॥६०॥

---

५८. खोरी = दोष, इलजाम। सांटि = छड़ी। बिललात = व्यर्थ को हल्ला मचाते हुए। कहा लगावति = क्यों दोष लगाती है।

५९. काँटी = झुक गई हूँ; जुड़ गई हूँ; शरण में हूँ। रिस बाँचि = क्रोध काबू में करना।

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।
पूछति सखी परसपर बातैं पायौ परचौ कछु तैं री।
पुलकित रोम रोम गदगद मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री मो कौं क्यों न सुनावै।
तनु न्यारौ, ज्यौ एक हमारौ, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखी सौं देख्यौ रूप अनूप ॥६१॥

आजु सखी मनि खंभ निकट हरि जहँ गोरस कौं गो री।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु प्रगट करै जनि चोरी।
आध बिभाग आजु तैं हम तुम भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कितै डारत हौ छाँड़ि देहु मति भोरी।
हिसा न लेहु सबै चाहत हौ इहै बात है थोरी।
मीठौ अधिक परम रुचि लागै दैहौं काढ़ि कमोरी।
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुंज गहि खोरी ॥६२॥

करत हरि ग्वालनि संग बिचार।
चोरि माखन खाहु सब मिलि करौ बाल बिहार।
यह सुनत सब सखा हरषे भली कही कन्हाइ।
हँसि परसपर देत तारी सौंह करि नँदराइ।
कहाँ तुम्ह यह बुद्धि पाई स्याम चतुर सुजान।
सूर प्रभु मिलि ग्वाल बालक करत हैं अनुमान ॥६३॥

चली ब्रज घर घरनि यह बात।
नंदसुत सँग सखा लीन्हें चोरि माखन खात।

---

६१. पायौ परचौ = गिरा हुआ कुछ पाया है। ज्यौ = प्राण।
६२. ज्यौं सिसु = जैसे कोई लड़के को सिखाता है। आध बिभाग = आधा हिस्सा। थोरी = छोटी बात है; अनुचित है।

कोउ कहति मेरे भवन भीतर अबहिं पैठे धाइ।
कोउ कहत मोहिं देखि द्वारैं गयौ तबहिं पराइ।
कोउ कहति केहि भाँति हरि कौं देखौं अपनैं धाम।
हेरि माखन देहिं आछौ खाइ जितनौ स्याम।
कोउ कहति मैं देखि पावौं भरि धरौं अँकवारि।
कोउ कहति मैं बाँधि राखौं को सकै निरुवारि।
सूर प्रभु के मिलन कारन करति बुद्धि बिचार।
जोरि कर बिधि कौं मनावति पुरुष नंदकुमार।।६४।।

जसोदा कहँ लौं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसैं सही परति है दूध दही की हानि।
अपने या बालक की करनी जौ तुम देखौ आनि।
गोरस खाइ ढूँढ़ि सब बासन भली करी यह बानि।
मैं अपने मंदिर के कोनैं माखन राख्यौ जानि।
सोई जाइ तुम्हारैं लरिका लीन्हौ है पहिचानि।
बूझी ग्वालिनि घर मैं आयौ नैंकु न संका मानि।
सूर स्याम तब उतर बनायौ चींटी काढ़त पानि।।६५।।

साँवरेहिं बरजति क्यौं जु नहीं।
कहा करौं दिन प्रति की बातैं नाहिंन परतिं सही।
माखन खात दूध लै डारत लेपत देह दही।
ता पाछैं घरहू के लरिकनि भाजत छिरकि मही।
जो कछु धरैं दुराइ दूर लै जानत ताहि तही।
सुनहु महरि तेरे या सुत सौं हम पचि हारि रही।

---

६४. हेरि = ढूँढ़कर। निरुवारि = छुड़ाना।
६५. कानि = संकोच। बानि = आदत। चींटी....पानि = हाथ से चींटी निकाल रहा था।
६६. बरजति = मना करती है। भाजत = भागते हैं। दुराइ = छिपाकर।

चोर अधिक चतुराई सीखी जाइ न कथा कही।
तापर सूर बछरुवन ढीलत बन बन फिरतिँ बही ॥६६॥

मेरौ गोपाल तनकसौ कहा करि जानै दधि की चोरी।
हाथ नचावति आवतिँ ग्वालिनि जीभि न करहीं थोरी।
कब सीकै चढ़ि माखन खायौ कब दधि मटुकी फोरी।
अँगुरिन करि कबहूँ नहिं चाखत घरहीं भरी कमोरी।
इतनी सुनत घोष की नारी बिहँसि चली मुख मोरी।
सूरदास जसुदा कौ नंदन जो कछु करै सो थोरी॥६७॥

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि बासर मोहिं बहुत सतायौ अब हरि हाथहिं आए।
माखन दधि मेरौ सब खायौ बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तौ आइ परे हौ लालन तुम्हें भले मैं चीन्ही।
दोउ भुज पकरि कह्यौ कित जैहौ माखन लेउ मँगाइ।
तेरी सौं मैं नैंकु न चाख्यौ सखा गए सब खाइ।
मुख तन चितै बिहँसि हँसि दीन्हौ रिस तब गई बुझाइ।
लियौ उर लाइ ग्वालिनी हरि कौं सूरदास बलि जाइ॥६८॥

कत हौ कान्ह काहू कैं जात।
ये सब बढ़ीं गर्ब गोरस कैं मुख सँभारि बोलतिँ नहिं बात।
जोइ जोइ रुचै सोइ सोई तब मो पै माँगि लेहु किन तात।
ज्यौं ज्यौं बचन सुन्यौ मुख अंमृत त्यौं त्यौं सुख पावतिँ सब गात।

---

६६. चोर अधिक चतुराई = चोरी से बढ़कर चालाकी सीखी है। बछरुवन = बछड़ों को।

६७ हाथ नचावति = हाथ नचाते हुए शिकायत करती हैं। जीभ ......थोरी = बकवास करती हैं। सीकैं = सिकहर, जो दीवाल में टँगा रहता है।

६८. अचगरी = नटखटपन। आइ परे = पकड़ में आए।

कैसी टेंव परी इन गोपिन्ह उरहन कैं मिस आवतिँ प्रात।
सूर सु कित हठि दोषलगावतिँ घरहूँ कौ माखन नहिँ खात ॥६९॥

स्याम गए ग्वालिनि घर सूनौ।
माखन खाइ डारि सब गोरस बासन फोरि सोर हठि दूनौ।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ तासु किए दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सो हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिं अवसर निकसत हरि धरि पायौ।
देखति घर बासन सब फूटे दही दूध ढरकायौ।
दोउ भुज धरि गाढ़े कर लीन्हे गई महरि के आगैं।
सूरदास अब बसै कौन ह्यां पनि रहिहै ब्रज त्यागैं ॥७०॥

करत कान्ह ब्रज घरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि पुनि उरहन लै आवति हैं सिगरी।
बड़े बाप के पूत कहावत हम वै बास बसत इक नगरी।
नंदहु तैं ये बड़े कहैहे फेरि बसैहैं ये ब्रजनगरी।
जननी के खीझत हरि रोए झूठैँहिं मोहिं लगावतिँ धँगरी।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा कहतिँ सबै जुवती हैं लँगरी ॥७१॥

महरि तुम ब्रज चाहतिँ कछु और।
बात एक मैं कही कि नाहीं आपु लगावति झौर।
जहाँ बसे पति नहीं आपनी तजन कह्यौ सो ठौर।
सुत के भए बधाई पाई लोगनि देखत हौर।
कान्ह पठाइ देति घर लूटन कहति करौ या गौर।

---

६९. उरहन = उलहना।

७०. माट = बड़ा घड़ा। कूक = ज़ोर की ध्वनि, किलकारी। गाढ़े = कसकर पकड़ा।

७१. सिगरी = सब। धँगरी = नीच स्त्रियाँ। लँगरी = टेढ़ी, उद्धत।

७२. झौंर = झगड़ा-टंटा।

ब्रज घर समुझि लेहु अपनौ अब हहा करति कर जोरि।
सूर सुनत ग्वालिनि की बातैं रहा जसुमति मुख मोरि ॥७२॥

जसुदा तू जो कहति ही मोसो।
दिन प्रति देन उरहनौ आवति कहा तिहारौ को सों।
यहै उरहनौ सत्य करन कौं गोबिंदहिं गहि ल्याई।
देखन चली जसोदा सुत कौं ह्वै गए सुता पराई।
तेरे हृदय नैंकु मति नाही बदन पेखि पहिचान्है।
सुनि री सखी कहति डोलति है या कन्या सौं कान्हैं।
तैं जु नाम कान्ह मेरे कौं सूधो है करि पायौ।
सूरदास स्वामी यह देखौ तुरत त्रिया ह्वै आयौ ॥७३॥

तेरैं लाल मेरौ माखन खायौ।
दुपहर दिवस जानि घर सूनौ ढूँढ़ि ढँढोरि आपही आयौ।
खोलि किंवार सूने मंदिर में दूध दही सब सखनि खवायौ।
सीकैं काढ़ि खाट चढ़ि मोहन कछु खायौ कछु लै ढरकायौ।
दिन प्रति हानि होति गोरस की यह ढोटा कौनैं ढँग लायौ।
सूरदास कहतीं ब्रजनारी जसुमति पूत अनोखौ जायौ ॥७४॥

मैया मैं नाहीं दधि खायौ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचे धरि लटकायौ।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसैं करि पायौ।
मुख दधि पोंछि कहत नँदनंदन दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि मुसकाइ तबहिं गहि सुत कौं गोद लगायौ।

---

७४. कौनैं ढँग लायौ = कैसी आदत कर रक्खी है। पूत = पुत्र।
७५. ख्याल परे = खेल-खेल में। दुरायौ = छिपाया।

बाल-बिनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप दिखायौ।
सूरदास प्रभु जसुमति कैं सुख सिव बिरंचि बौरायौ ॥७५॥

बाँधौं आजु कौन तोहि छोरै।
बहुत लँगरई कीन्ही मोसौं भुज गहि रजु ऊखल सौं जोरै।
जननी अति रिस जानि बँधायौ चितै बदन लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रज जुवती उठि धाईं कहतिँ कान्ह अब कै नहिं चोरै।
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा मारन कौं साँटी कर तोरै।
साँटी पेखि ग्वालि पछितानी बिकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै।
सुनहु महरि ऐसी न बूझिऐ सुत बांधति माखन दधि थोरैं।
सूर स्याम कौं बहुत सतायौ चूक परी हमतैं यह भोरैं ॥७६॥

जाहु चली अपनैं अपनैं घर।
तुमहीं सब मिलि ढीठ करायौ अब आईं बंधन छोरन बर।
मोहिं अपने बाबा की सौंहैं कान्हैं अब न पत्याउँ।
भवन जाहु अपनैं अपनैं सब लागति हौं मैं पाउँ।
मोकौं जनि बरजौ जुवती कोउ देखौ हरि के ख्याल।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा बड़े नंद के लाल ॥ ७७ ॥

देखौ माइ कान्ह हिलकियनि रोवै।
तनकहिं मुख माखन लपटान्यौ डर तैं अँसुवनि धोवै।
माखन लागि उलूखल बाँध्यौ सकल लोग ब्रज जोवै।
निरखि कुरुख उन लरिकनि की दिसि लाजन अँखियनि धोवै।

---

७५. बौरायौ = पागल कर दिया।
७६. रजु = रस्सी। ढोरै = गिराते हैं।
७७. ख्याल = करामात। 'बड़े नंद के लाल' = व्यंग्य में (क्रोधनाट्य)
७८. हिलकियनि = हिलकी ले-लेकर। तनकहि = थोड़ा-सा। कुरुख = चिढ़ के साथ।

ग्वाल कहैं धनि जननि हमारी सुकर सुरभि नित नोवै।
बरबस हीं बैठारि गोद मैं धारै बदन निचोवै।
ग्वालि कहैं या गोरस कारन कत सुत की पति खोवै।
आनि देहिं हम अपने घर तैं चाहति जितकु जसोवै।
जब जब बंधन छोरयौ चाहति सूर कहै यह को वै।
मन माधव तन चित गोरस मैं इहिं बिधि महरि बिलोवै॥ ७८॥

कहौ तौ माखन ल्याऊँ घर तैं।
जा कारन तू छोरति नाहीं लकुट न डारति कर तैं।
महरि सुनहु ऐसी न बूझिऐ सकुचि गयौ मुख डर तैं।
मनहुँ कमल दधिसुत समयौ तकि फूलत नाहिँन सर तैं।
ऊखल लाइ भुजा धरि बाँधे मोहन मूरति बरतैं।
सूर स्याम लोचन जल बरषत जनु मुक्ता हिमकर तैं॥ ७९॥

कहन लगीं अब बढ़ि बढ़ि बात।
ढोटा मेरौ तुमहिं बँधायौ तनकहिं माखन खात।
अब मोहिं माखन देति मँगाए मेरैं घर कछु नाहिं।
उरहन करि करि साँझ सबारैं तुमहिँ बँधायौ याहि।
रिसही मैं मोकौं गहि दीन्हौ अब लागीं पछितान।
सूरदास हँसि कहति जसोदा बूझ्यौ सब कौ ज्ञान॥ ८०॥

ऐसी रिस तोकौं नँदरानी।
भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी बड़ी बैस अब भई सयानी।

---

७८ सुकर = अपने हाथ। सुरभि = गाय। नोवै = नोई बाँधकर दुहती है। बिलोवै = मक्खन निकालती है।

७९. दधिसुत समयौ तकि = चन्द्रमा के उदय होने का समय जानकर। बरत = ज़बरदस्ती।

८१. बड़ी बैस = बुढ़ापे में। सयानी = अक़लमन्द (व्यंग्य में)।

ढोटा एक भयौ कैसैंहु करि कौन कौन करबर बिधि भानी।
क्रम क्रम करि अबलौं है उबरचौ ताकौं मारि पितर दै पानी।
को निरदयी रहै तेरैं घर को तेरैं सँग बैठै आनी।
सुनहु सूर कहि कहि पचिहारी जुवती चलीं घरहिं बिरुझानी ॥८१॥

अब घर काहू कैं जनि जाहु।
तुम्हरैं आजु कमी काहे की कत तुम अनतहिं खाहु।
बरै जेंवरी जिन तुम्ह बाँधे परै हाथ भहराइ।
नंद मोहि अति ही त्रासत हैं बाँधे कुँवर कन्हाइ।
रोग जाउ अपने हलधर कौ छोरत हैं तब स्याम।
सूरदास प्रभु खात फिरौ जनि माखन दधि तुव धाम ॥ ८२ ॥

ब्रज जुवती स्यामहिं उर लावतिँ।
बारहिं बार निरखि कोमल तनु कर जोरतिँ बिधि कौं जु मनावतिँ
कैसैं बचे अगम तरु कैंतर मुख चुंबतिँ यह कहि पछितावतिँ।
उरहनौ लै आवतिँ जेहि कारन सो सुख फल पूरौ करि पावतिँ।
सुनहु महरि इनकौं तुम बाँधति भुज गहि बंधन चिन्ह दिखावतिँ।
सूरदास प्रभु अति रति नागर गोपी हरषि हृदयँ लपटावतिँ ॥८३॥

जसुमति कहति कान्ह सौं मेरे अपनैं ही आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा संग के मेरौ कह्यौ कबहुँ जनि पेलौ।
ब्रज-बनिता सब चोर कहतिँ तोहिं लाजनि सकुचि जात मन मेरौ।
आज मोहिं बलराम कहत हे झूठैंहि नाम लेति हैं तेरौ।

---

८१. करबर = संकट। बिधि भानी = भगवान् ने टाले। उबरयो = बचा है। पितर दै पानी = पितरों का उद्धार कर (व्यंग्य में)।
८२. जेंवरी = रस्सी, भहराइ = टूट पड़ना।
८४. पेलौ = टालौ, उल्लंघन करो।

जब मोहिं रिस लागति तब त्रासति बांधति जैसैं चेरौ।
सूर हँसतिं ग्लालिनि दै तारी चोर नाम कैसैंहु सुत फेरौ ॥ ८४॥

मोहिं कहतिं जुवती सब चोर।
खेलत रहौं कतहुँ मैं बाहर चितै रहतिं सब मेरी ओर।
बोलि लेतिं भीतर घर अपनैं मुख चूमतिं भरि लेतिं अँकोर।
माखन हेरि देतिं अपनैं कर कछु कहि बिधि सौं करतिं निहोर।
जहाँ मोहिं देखतिं तहाँ टेरतिं मैं नहिं जात दोहाई तोर।
सूर स्याम हँसि कंठ लगायौ वै तरुनी कहँ बालक मोर ॥ ८५ ॥

भूखौ भयौ आजु मेरौ बारौ।
भोरैंहि ग्वालिनि उरहनौ ल्याइ उहिँ यह कियौ पसारौ।
पहिलैंहि रोहिनि सौं कहि राख्यौ तुरत करहु ज्यौनार।
ग्वाल बाल सब बोलि लिए मिलि बैठे नंदकुमार।
भोजन बेगि लाउ कछु मैया भूख लगी मोहिं भारी।
आजु सबारैं कछू न खायौ सुनत हँसी महतारी।
रोहिनि चितै रही जसुमति तन सिर धुनि धुनि पछितानी।
परसहु बेगि बेर कत लावति भूखे सारँगपानी।
बहु ब्यंजन बहु भाँति रसोई षटरस के परकार।
सूर स्याम हलधर दोउ भैया और सखा सब ग्वार ॥८६॥

गोदोहन

धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि।
आपुन बैठि गये तिनकें सँग सिखवहु मोहिं कहत गोपालनि।

---

८४. चेरौ = गुलाम, दास। फेरौ = बदलो।
८५. अँकोर = आलिंगन।
८६. पसारौ = तूल देना।

हँसत हँसत दोउ बाहर आये माता लै जल बदन पखारयौ।
दतुवनि लै दुहुँ करी मुखारी नैननि कौ आलस जु बिसारयौ।
माखन खाहु दुहुनि कर दीन्हौ तुरत मथ्यौ मीठौ अति सारयौ।
सूरदास प्रभु खात परसपर माता अंतर हेत बिचारयौ ॥९०॥

तनक कनक की दोहनी दै दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ मोहिं धौरी गैया।
अटपटे आसन बैठि कै गो थन कर लीन्हौ।
धार अनत हीं देखि कै ब्रजपति हँसि दीन्हौ।
घर घर तैं आई सबै देखन ब्रजनारी।
चितै चोरि चित हरि लियौ हँसि गोपबिहारी।
बिप्र बोलि आसन दियौ करी बेद उचारी।
सूर स्याम सुरभी दुही संतन हितकारी ॥९१॥

बकासुरवध

बका बिदारि चले ब्रज कौं हरि।
सखा संग आनंद करत सब अंग अंग बनधातु चित्र करि।
बनमाला पहिरावत स्यामहिं बार बार अँकवार भरत धरि।
कंस निपात करौगे तुमही हम जानी यह बात सही परि।
पुनि पुनि कहत धन्य नँदजसुमति जिन इनकौं जनम्यौ सो धनि घरि।
कहत यहै सब जात सूर प्रभु आनँद आँसू लेत नैन भरि ॥९२॥

---

९०. सारयौ = बनाया हुआ, काढ़ा हुआ।
९१. धौरी = सफ़ेद। करी बेद उचारी = वेदध्वनि की।
९२. बनधातु = एक प्रकार की सफ़ेद मिट्टी। सही परि = निश्चयपूर्वक होगी।

ब्रजबालक सब जाइ तुरत हीं महर महरि कैं पाइ परे।
ऐसौ पूत जन्यौ जग तुमहीं धन्य कोख जहँ स्याम धरे।
गाइ लिवाइ गये बृंदाबन चरत चलीं जमुना तट हेरि।
असुर एक खग रूप रह्यौ धरि बैठ्यौ तीर बाइ मुख घेरि।
चोंच एक पुहुमी करि राखी एक रह्यो हो गगन लगाइ।
हम बरजत हरि पहिलैंहि धायौ बदन चीरि पल माहिं गिराइ।
सुनत नंद जसुमति अति चक्रित, चक्रित चित सुनि नर अरु नारि।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ तब जननी भरि लई अँकवारि ॥९३॥

गोचारण

नंद महर के भावते जागौ मेरे बारे।
प्रात भयौ उठि देखिऐ रबि किरनि उज्यारे।
ग्वाल बाल सब टेरहीं गैया बन चारन।
लाल उठौ मुख धोइऐ लागी बदन उघारन।
मुख तैं पट न्यारौ कियौ माता कर अपनैं।
देखि बदन चक्रित भई सौंतुक कै सपनैं।
कहा कहौं वहि रूप की को बरनि बतावै।
सूरज प्रभु गुन अपार नँद सुवन कहावै ॥ ९४॥

दोउ भैया जेंवत मा आगैं।
पुनि पुनि लै दधि खात कन्हाई और जननि पै माँगैं।
अति मीठौ दधि आज जमायौ बलदाऊ तुम लेहु।
देखौ धौं दधि स्वाद आपु लै ता पाछैं मोहिं देहु।
बल मोहन दोउ जेंवत रुचि सौं सुख लूटति नँदरानी।
सूर स्याम अब कहत अघाने अँचवन माँगत पानी॥ ९५॥

---

९३. बाइ मुख = मुँह बाकर। पुहुमी = ज़मीन।
९४. भावते = प्यारे। सौंतुक = प्रत्यक्ष। कै = अथवा।

बन पहुँचत सुरभी लईं धाइ।
जैहौ कहाँ सखनि कौं टेरत हलधर संग कन्हाइ।
जेंवत परखि लियौ नहि हमकौं तुम अति करी चँड़ाइ।
अब हम जैहैं दूरि चराबन तुम सँग रहैं बलाइ।
यह सुनि ग्वाल धाइ तहँ आए स्यामहिं अंकम लाइ।
सखा कहत यह नंदसुवन सौं तुम सबके सुखदाइ।
आज चलौ बृंदाबन जैऐ गैया चरैं अघाइ।
सूरदास प्रभु सुनि हरषित भए घरतैं छाक मँगाइ॥ ९६॥

गैयनि घेरि सखा सब ल्याए।
देख्यौ कान्ह जात बृंदाबन यातैं मन अति हरष बढ़ाए।
आपुस में सब करत कुलाहल धौरी धूमरि धेनु बुलाए।
सुरभी हांकि देत सब जँह तँह टेरि टेरि हेरी सुर गाए।
पहुँचे आइ विपिन घन बृंदा देखत द्रुम दुख सबनि गवांए।
सूर स्याम गए बका मारिकै ता दिन तैं इहिं बन अब आए॥९७॥

चरावत बृंदाबन हरि धेनु।
बाल सखा सब संग लगाए खेलत हैं करि चैनु।
कोउ गावत कोउ मुरलि बजावत कोउ बिषान कोउ बैन।
कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै जुरी ब्रजबालक सैन।
त्रिबिध पवन जहँ बहत सु निसिदिन सुभग कुंज घन ऐन।
सूर स्याम निज धाम बिसारत आवत यह सुख लैन॥ ९८॥

---

९६. परखि = ठहरकर प्रतीक्षा करना। चँड़ाइ = फुर्ती। अंकम = अँकवार, आलिंगन। छाक = दोपहर का भोजन, जो अहीर प्रायः वन में करते हैं।

९७. धूमरि = धूम्र वर्ण की। हेरी = हे या हो की टेक देकर गाया जानेवाला ग्रामगीत।

९८. विषान = बारहसिंहा बाजा। उघटि तार दै = ताली या चुटकी आदि के द्वारा ताल का संकेत करना। ऐन = घर।

बृंदाबन मोकौं अति भावत ।
सुनहु सखा तुम सुबल स्रीदामा ब्रज तैं बन गौ-चारन आवत ।
कामधेनु सुरतरु सुख जितने सभा सहित बैकुंठ बुलावत ।
यह बृंदाबन यह जमुनातट ये सुरभी अति सुखद चरावत ।
पुनि पुनि कहत स्याम स्रीमुख तैं तुम मेरैं मन अतिहिं सुहावत ।
सूरदास सुनि ग्वाल चकित भए यह लीला हरि प्रगट दिखावत ।।९९।।

सुभग साँवरे गात की मैं सोभा कहत लजाउँ ।
मोर पंख सिर मुकुट की मुख पटकनि की बलि जाउँ ।
कुंडल लोल कपोलनि झाँईं बिहँसनि चितहिं चुरावै ।
दसन दमक मोतिनि लर ग्रीवा सोभा कहत न आवै ।
उर पर पदिक कुसुम बनमाला अँग धुकधुकी बिराजै ।
चित्रित बाहु पहुँचियाँ पहुँचै हाथ मुरलिका छाजै ।
कटि पट पीत मेखला मुकुलित पाइनि नूपर सोहै ।
आस पास बर ग्वाल मंडली देखत त्रिभुवन मोहै ।
सब मिलि आनँद प्रेम बढ़ावत गावत गुन गोपाल ।
यह सुख देखत स्याम संग कौ सूरदास सब ग्वाल ।। १०० ।।

छाक लेन जे ग्वाल पठाए ।
तिनसौं बूझति महरि जसोदा छाँड़ि कन्हैयहिं आए ?
हमहिं पठाइ दए नँदनंदन भूखे अति अकुलाए ।
धेनु चरावत हैं बृंदाबन हम इहिं कारन आए ।
यह कहि ग्वाल गए अपनैं घर बन की खबरि सुनाए ।
सूर स्याम बलराम प्रातहीं अध जेंवत उठि धाए ।। १०१ ।।

---

१००. झाँईं = चमक या छाया । पदिक = आभूषणविशेष ।
धुकधुकी = एक आभूषण जो सीने पर धारण करते हैं ।
१०१. अधजेंवत = आधे पेट खाकर ।

जोरति छाक प्रेम सौं मैया।
ग्वालनि बोलि लए अधजेंवत उठि वौरे दोउ भैया।
तबही तैं भोजन नहिं कीनौ चाहति दियौ पठाइ।
भूखे आजु भए दोउ भैया आपहि बोलि मँगाइ।
सद माखन साजौ दधि मीठौ मधु मेवा पकवान।
सूर स्याम कौं छाक पठावति कहति ग्वारि सौं जान ॥ १०२ ॥

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई।
टेरि टेरि मैं भई बावरी दोउ भैया तुम रहे लुकाई।
जे सब ग्वाल गए ब्रज घर कौं तिनसौं कहि तुम छाक मँगाई।
लवनी दधि मिष्टान जोरि कै जसुमति मेरैं हाथ पठाई।
ऐसी भूख माझ तू ल्याई तेरी केहि बिधि करौं बड़ाई।
सूर स्याम सब सखनि पुकारत आवहु क्यौं न छाक है आई ॥ १०३॥

गिरि पर चढ़ि गिरिवरधर टेरे।
अहो सुबल स्रीदामा भैया ल्यावहु गाइ खरिक कैं नेरे।
आई छाक अबार भई है नैंसुक धैया पियेहुँ सबेरे।
सूरदास प्रभु बैठि सिलनि पर भोजन करें ग्वाल चहुँ फेरे ॥१०४॥

आई छाक बुलाए स्याम।
यह सुनि सखा सबै जुरि आए सुबल सुदामा अरु स्रीदाम।
कमल पत्र दोना पलास के सब आगें धरि परुसत जात।
ग्वाल मंडली मध्य स्यामघन सब मिलि भोजन रुचि करि खात।

---

१०२. जोरति छाक = छाक की सामग्री सजाती है। चाहति = खबर।
१०३. माझ = मध्य में; बीच में।
१०४. खरिक = गायों के खड़े करने का स्थान। नैंसुक = स्वल्प; थोड़ा-सा। धैया = गाय के थन का दूध। चहुँफेरे = मंडली बनाकर।

ऐसी भूख माँझ यह भोजन पठै दियौ करि जसुमति मात।
सूर स्याम अपनौ नहिं जेंवत ग्वालनि कर तैं लै लै खात ॥१०५॥

सखनि संग हरि जेंवत छाक।
प्रेम सहित मैया दै पठए सबै बनाए हैं एकताक।
सुबल सुदामा स्रीदामा सँग सब मिलि भोजन रुचि सौं खात।
ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत मुख लै मेलि सराहत जात।
जो सुख कान्ह करत बृंदाबन सो सुख नहीं लोक हूँ सात।
सूर स्याम भक्तनि बस ऐसे ब्रजहिं कहावत हैं नँदतात ॥१०६॥

ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत।
जूठौ लेत सबनि के मुख कौ अपनैं मुख लै नावत।
षटरस के पकवान धरे सब तामैं नहिं रुचि पावत।
हा हा करि करि माँगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत।
यह महिमा एई पै जानैं जातैं आप बँधावत।
सूर स्याम सपनें नहिं दरसत मुनिजन ध्यान लगावत ॥ १०७ ॥

जेंवत छाक गाइ बिसराई।
सखा स्रीदामा कहत सबनि सौं छाकहि मैं तुम रहे भुलाई।
धेनु नहीं देखिअत कोउ नियरे भोजन ही मैं साँझ लगाई।
सुरभि काज जहँ तहँ उठि धाए आपु तहाँ उठि चले कन्हाई।
ल्याये ग्वाल घेरि गो गोसुत देखि स्याम मन हरष बढ़ाई।
सूरदास प्रभु कहत चलौ घर बन मैं आजु अबार लगाई ॥ १०८ ॥

---

१०६. एकताक = रुचिपूर्वक, ध्यान लगाकर। कौर = ग्रास, कवल।
१०७. हा हा करि = मिन्नत करके, दीन स्वर में।
१०८. नियरे = निकट, नज़दीक।

ब्रजहिं चलौ आई अब साँझ।
सुरभी सबै लेहु आगैं करि रैनि होइ पुनि बनहीं माझ।
भली कही यह बात कन्हाई अतिहि सघन आरन्य उजार।
गैयाँ हाँकि चलाईं ब्रज कौं और ग्वाल सब लिए पुकार।
निकसि गए बन तैं सब बाहिर अति आनंद भए सब ग्वाल।
सूरदास प्रभु मुरलि बजावत ब्रज आवत नटवर गोपाल ॥ १०९ ॥

देखि सखी बन तैं जु बने ब्रज आवत हैं नँदनंदन।
सिखंड सीस मुख मुरलि बजावत बन्यौ तिलक उर चंदन।
कुटिल अलक मुख चंचल लोचन निरखत अति आनंदन।
कमल मध्य मानौ द्वै खंजन बँधे आइ उड़ि फंदन।
अरुन अधर छबि दसन बिराजति जब गावत कल मंदन।
मुक्ता मनौ लाल मनिमय पुट धरे मुरकि बर बंदन।
गोप बेष गोकुल गो चारत हैं प्रभु असुर निकंदन।
सूरदास प्रभु सुजस बखानत नेति नेति स्रुति छंदन ॥ ११० ॥

सोभा कहत कहे नहिं आवै।
अँचवत अति आदर लोचन पुट मन न रूप कौं पावै।
सजल मेघ घनस्याम सुभग बपु तड़ित बसन उर माल।
सिखी सिखर तन धातु बिराजति सुमन सुगंध प्रबाल।
कछुक कुटिल कोविपिन सघन सिर गोरज मंडित केस।
सोभित मनु अंबुज पराग रस राजत अली सुवेस।

---

१०९. आरन्य = जंगल, वन। नटवर = सुन्दर नट-रूप धारण किये हुए।
११०. सिखंड = मयूरपुच्छ। 'कमल' मुख के, 'खंजन' आँखों के और 'फंदन' अलकों के उपमान हैं। कल मंदन = मीठे स्वर में। मुरकि = छिड़ककर। बंदन = रोली।
१११. अँचवत = पीते हैं। लोचन पुट = आँखों के पात्रों से कमल। पराग = फूल की धूलि, पुष्परेणु।

कुंडल किरिन कपोल कुटिल छबि नैन कमल दल मीन।
प्रति प्रति अंग अंग कोटिक छबि सुनु सखि परम प्रबीन।
अधर मधुर मुसकानि मनोहर कोटि मदन मनहीन ।
सूरदास जहँ दृष्टि परनि है होति तही लवलीन ॥ १११ ॥

बन तैं आवत धेनु चराए।
संध्या समय साँवरे मुख पर गोपद रज लपटाए।
बरह मुकुट कैं निकट लसति लट मधुप बने रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलद आनन पर उड़त न जात उड़ाए।
बिधि-बाहन-भच्छन की माला राजति उर पहिराए।
एक बपु रहे नाहि बड़े छोटे ग्वाल बने एकदाए।
सूरदास मिलि लीला प्रभु की जीवत जन जस गाए ॥११२ ॥

आजु हरि धेनु चराए आवत।
मोर मुकुट बनमाल बिराजत पीतांबर फहरावत।
जेहि जेहि भाँति ग्वाल सब बोलत सुनि स्रवननि मन राखत।
आपुन टेरि लेत नान्हें सुर हरषत मुख पुनि भाषत।
देखत नंद जसोदा रोहिनि अरु देखत ब्रज लोग।
सूर स्याम गाइनि सँग आए मैया लीन्हौ रोग ॥ ११३ ॥

जसुमति दौरि लए हरि कनियां।
आजु गयौ मेरौ गाइ चरावन हौं बलि गई निछनियां।
मो कारन कछु आन्यौ है बलि बनफल तोरि कन्हैया ?
तुमहिं मिले मैं अति सुख पायौ मेरे कुबँर नन्हैया।

---

१११. मनहीन = उदासीन ।

११२. बरह = मयूर। बिधि-बाहन-भच्छन = मोती। एक बपु = एक ही प्रकार के शरीरवाले। एकदाए = एक ही आकार के। जन = दास ।

११३. लीन्हौ रोग = नजर झाड़ना।

११४. कनियां = गोद। निछनियां = पूर्ण रूप से।

कछुक खाहु जो भावै मोहन दै री माखन रोटी।
सूरदास प्रभु जीवहु जुग जुग हरि हलधर की जोटी ॥ ११४ ॥

मैं अपनी सब गाइ चरैहौं।
प्रात होत बल कैं सँग जैहौं तेरैं कहे न भुरैहौं।
ग्वाल बाल लै गाइनि भीतर नैकहुँ डर नहिं लागत।
आजु न सोवौं नंद दोहाई रैनि रहौंगो जागत।
और ग्वाल सब गाइ चरैहैं मैं घर बैठौ रैहौं।
सूर स्याम अब सोइ रहौ तुम प्रात जान मैं दैहौं॥ ११५ ॥

बहुतै दुख हरि सोइ गयौ री ।
साँझहि तैं लाग्यौ इहि बातहिं क्रम क्रम तैं मन बोधि लयौ री।
एक दिवस गयौ गाइ चरावन ग्वालनि साथ सबारें ।
अब तौ सोइ रह्यौ है कहि कै प्रातहिं कहा बिचारै!
यह तौ सब बलरामहिं लागै संग लै गयौ लिवाइ ।
सूर नंद यह कहत महरि सौं आवन दै फिरि धाइ॥ ११६ ॥

मैया री मोहिं दाऊ टेरत।
मो कौं बनफल तोरि देत हैं आपुन गैयनि घेरत।
और ग्वाल संग कबहुँ न जैहौं वै सब मोहिं खिझावत।
मैं अपने दाऊ संग जैहौं बन देखत सुख पावत।
आगैं दै पुनि ल्यावत घर कौं तू मोहिं जान न देति।
सूर स्याम कहै जसुमति मैया हा हा करि करि केति॥ ११७ ॥

---

११४. जोटी = जोड़ी।

११५. भुरैहौं = धोखा खाऊँगा।

११६. मन बोधि लयौ = इत्मीनान कर लिया। बलरामहि लागै = बलराम का क़सूर है। फिरि धाइ = दौड़-फिरकर।

११७. केति = कितना ही ।

बोलि लियौ बलरामहिं जसुमति।
आवहु लाल सुनहु हरि के गुन कालिहि तैं लँगरई करत अति।
स्यामहिं जान देहु मेरैं संग तू काहैं डर पावति।
मैं अपने ढिग तैं नहिं टारौं जियहिं प्रतीति न आवति।
हँसी महरि बल की बातैं सुनि बलिहारी या मुख की।
जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौ कहत बीर के रुख की॥ ११८ ॥

चरावत बृंदाबन हरि गाइ।
सखा लिए सँग सुबल स्रीदामा डोलत हैं सुख पाइ।
क्रीडा करत जहाँ तहाँ सब मिलि अति आनंद बढ़ाइ।
बगरि गईं गैयाँ बन बीथिनि देखीं अति बहुताइ।
कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोउ गए बछुरु लिवाइ।
आपुहि रहे अकेलैं बन मैं कहुँ हलधर रहे जाइ।
बंसी बट सीतल जमुनातट अतिहिं परम सुखदाइ।
सूर स्याम तब बैठि बिचारत सखा कहाँ बिरमाइ॥ ११९॥

पाई पाई है रे भैया कुंज बृंद मैं टाली।
अब कैं अपनी हटकि चरावहु जैहै हटकी घाली।
आवहु बेगि सकल दुहुँ दिसि तैं कत डोलत अकुलाने।
सुनि मृदु बचन देखि उन्नत कर हरषि सबै समुहाने।
तुम तौ फिरत अनत हीं ढूँढ़त ये बन फिरतिं अकेली।
ह्वाँ की गाइ कौन पै लैहौ सघन बहुत द्रुम बेली।

---

११८. बीर के रुख की = भाई के मन की बात।
११९. बगरि गईं = फैल गईं। बीथिनि = गलियों में। बिरमाइ = बिरम गये, अटक गये।
१२०. टाली = गायों की टाल या समूह। हटकि = हटककर; मन-माने रास्ते न जाने देकर। उन्नत कर = उठाया हुआ हाथ (बुलाने की मुद्रा। समुहाने = सामने की ओर बढ़े।

सूरदास प्रभु मधुर बचन कहि राखत सबहिं बुलाए।
नृत्य करत आनँद गो चारत सबहि कृष्ण पै आए॥ १२० ॥

बलदाऊ कहि स्याम पुकारयौ।
आवहु बेगि चलहु घर जैयै बनही मैं पुनि होत अँध्यारौ।
ल्याए बोलि सखा हलधर कौं हँसे स्याम मुख चाहि।
बड़ी बेर भइ तुमहिं कन्हैया गाइनि लेहु निबाहि।
हेरी देत चले सब बन तैं गोधन दिए चलाइ।
सूरदास प्रभु राम स्याम दोउ ब्रजजन के सुखदाइ॥ १२१ ॥

हरि आवत गाइनि कैं पाछे।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल नयन बिसाल कमल तैं आछे।
मुरली अधर धरन सीखत हैं बनमाला पीतांबर काछे।
ग्वाल बाल सब बरन बरन के कोटि मदन की छबि कियौ पाछे।
पहुँचे आइ स्याम ब्रजपुर मैं घरहिं चले मोहन बल आछे।
सूरदास प्रभु दोउ जननी मिलि लेतिं बलाइ बोलि मुख बाछे ॥१२२॥

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाइ पिराइ।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि सुनि जसुमति ग्वालनि कौं गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक मारत ताहि रिँगाइ॥ १२३ ॥

---

१२१. चाहि = देखकर। निबाहि = सँभालना।
१२२. काछे = काछकर पहने हुए। बल = बलराम। बोलि मुख बाछे = मुख से शुभ कामना करती हुई, बाचा बोलती हुई।

बल मोहन बन तैं दोउ आए।
जननि जसोदा मातु रोहिनी हरषि दुहुँनि दोउ कंठ लगाए।
काहैं आजु अबार लगाई काहैं कमल बदन कुम्हिलाए।
भूखे भए आजु दोउ भैया प्रात कलेऊ करन न पाए।
देखहु जाइ कहा जेंवन कियौ, जसुमति रोहिनि तुरत पठाई।
मैं अन्हवाए देति दुहुनि कौं तुम भीतर अति करहु चँडाई।
लकुट लियौ मुरली कर लीन्ही हलधर दियौ बिषान।
नीलांबर पीतांबर लीन्हे सैंति धरति करि प्रान।
मुकुट उतारि धरयौ मंदिर लै पोंछति है अँगधातु।
अरु बनमाल उतारति गर तैं सूर स्याम की मातु॥ १२४॥

अंग अभूषन जननि उतारति।
दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की केउर लै भुज स्याम निहारति।
छुद्रावली उतारति कटितैं सैंति धरति मन ही मन वारति।
रोहिनि भोजन करहु चँडाई बार बार कहि कहि करी आरति।
भूखे भए स्याम हलधर ए यह कहि अंतर प्रेम विचारति।
सूरदास प्रभु मातु जसोदा पट लै दुहुँनि अंग रज झारति॥ १२५॥

राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि काछनी पीतांबर ओढ़े हाथ लिए भौंरा चक डोरी।

---

१२४. जेवन = रसोई । चँडाई = जल्दी । सैंति = सहेजकर । करि प्रान = प्राणों के समान।

१२५. केउर = कयूर या बिजायठ (बाहु-भूषण)। छुद्रावलि = किंकणी या करधनी। आरति = आतुरता का भाव।

१२६. काछनी = कसकर और दोनों छोर पीछे की ओर खोंस कर पहनी हुई धोती। भौंरा चक डोरी = चकई और उसे नचानेवाली डोरी।

मोर मुकुट कुंडल स्रवननि बर दसन दमक दामिनि छबि थोरी।
गए स्याम रबितनया कैं तट अंग लसति चंदन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा नयन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठि रुचिर झकझोरी।
संग लरिकनी चलि इत आवति दिन थोरी अति छबि की गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी॥ १२६॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।
काहे कौं हम ब्रज तन आवतिँ खेलति रहतिँ आपनी पौरी।
सुनति रहतिँ स्रवननि नँद ढोठा करत रहत माखन दधि चोरी।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरई राधिका भोरी॥१२७॥

गइ बृषभानुसुता अपनैं घर।
संग सखी सौं कहति चली यह को खेलै इनकैं बर।
बड़ी बेर भइ जमुना आए खीझति ह्वैहै मैया।
बचन कहति मुख, हृदयँ प्रेम सुख, मन हरि लियौ कन्हैया।
माता कही कहाँ हुती प्यारी कहाँ अबार लगाई।
सूरदास तब कहति राधिका खरिक देखि मैं आई॥ १२८॥

मोहि दोहनी दै री मैया।
खरिक माहिँ अबहीं ह्वै आई अहिर दुहत अपनी सब गैया।

---

१२६. खोरी = त्रिपुंड या तिलक। फरिया = दुपट्टा। झकझोरी = झूमती या लटकती हुई। ठगौरी = मोहित होना।
१२७. पौरी = द्वार। भुरई = भुलाया। भोरी = भोली।

ग्वाल दुहत तब गाइ हमारी जब अपनी दुहि लेत।
घरिक मोहिं लगिहै खरिका मैं तू आवै जनि हेत।
सोचति चली कुँवरि घर ही तैं खरिका गइ समुहाइ।
कब देखौं वह मोहन मूरति जिन मन लियौ चुराइ।
देख्यौ जाइ तहाँ हरि नाहीं चकित भई सुकुमारि।
कबहूँ इत कबहूँ उत डोलति लागी प्रेम खंभारि।
नंद लिए आवत हरि देखे तब पायौ बिस्राम।
सूरदास प्रभु अंतरजामी कीन्ह्यौ पूरन काम ॥ १२९ ॥

नंद गए खरिकहिं हरि लीन्हे।
देखी तहाँ राधिका ठाढ़ी स्याम बुलाइ लई तहँ चीन्हे।
महर कह्यौ खेलहु तुम दोऊ दूरि कहूँ जनि जैहौ।
गनती करत ग्वाल गैयनि की मोहिं नियरे तुम रैहौ।
सुनु बेटी बृषभानु महर की कान्हहि लिए खिलाइ।
सूर स्याम कौं देखे रहिहौ मारै जनि कोउ गाइ ॥ १३० ॥

गगन गरजि घहराइ जुरी घटा कारी।
पौन झकझोर चपला चमक चहुँ ओर सुवन तन चितै नँद डरत भारी।
कह्यौ बृषभानु की कुँवरि सौं बोलि कै राधिका कान्ह घर लिऐं जारी।
दोउ घर जाहु सँग, भयौ नभ स्याम रँग, कुँवरि सौं कह्यौ बृषभानु वारी।
गए बन सघन ओर नवल नँदनँद किसोर नवल राधा नए कुंज भारी।
अंग कँटकित भए मदन तिन तन जए सूर प्रभु स्याम स्यामा बिहारी ॥ १३१ ॥

---

१२९. हेत = फिक्र करके, प्रेमवश। समुहाइ = सामने पहुँची। खंभारि = घबराहट।
१३०. लिए खिलाइ = लेकर खिला।
१३१. सुवन = पुत्र। कँटकित = रोमांचित।

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपनैं उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहे उर उर ज्यौं मरकत मनि कंचन मैं जरिया।
उपमा काहि देउँ को लायक मन्मथ कोटि वारनैं करिया।
सूरदास बलि बलि जोरी पर नंदकुँवर बृषभानु दुलरिया॥१३२॥

खेलन कैं मिस कुँवरि राधिका नंद महर घर आई।
सकुच सहित मधुरे करि बोली घर हौ कुंवर कन्हाई।
सुनत स्याम कोकिल सम बानी निकसे अति अतुराई।
माता सौं कछु करत कलह हे सो डारयौ बिसराई।
मैया री तू इनकौं चीन्हति बारंबार बताई।
जमुना तीर काल्हि मैं भूल्यौ बाँह पकरि लै आई।
आवति इहाँ तोहिं सकुचति है मैं दै सौंह बुलाई।
सूर स्याम गहि बाँह राधिका महरि निकट बैठाई॥१३३॥

नामु कहा है तेरौ प्यारी।
बेटी कौन महर की है तू कहि सु कौन तेरी महतारी।
मैं बेटी बृषभान् महर की मैया तुमकौं जानति।
जमुना तट बहु बार मिलन भयौ तुम नाहिंन पहिचानति ?
ऐसी कही वाकौं मैं जानति वै तौ बड़ी छिनारि।
महर बड़ा लंगर सब दिन कौ हँसति देति मुख गारि।
राधा बोलि उठी बाबा कछु तुमसौं ढीठ्यो कीन्ही ?
ऐसे समरथ कब मैं देखे हँसि प्यारी उर लीन्ही।

---

१३२. उर उर ज्यौं = आलिंगन की मुद्रा। जरिया = जड़ी हुई हो। वारनैं करिया = न्यौछावर करता हूँ।
१३३. मिस = व्याज से। कलह = झगड़ा।
१३४. लंगर = चंचल और ढीट। ढीठ्यौ कीन्ही = ढिठाई की है। समरथ = बलवान्।

महरि कुँवरि सौं यह करि भाषति आउ करौं तेरी चोटी।
सूरदास हरषी नँदरानी कहति महरि हम जोटी॥ १३४॥

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति।
बड़े बार सीमंत सीस के प्रेम सहित लै लै निरुवारति।
माँग पारि बेनीहि सँवारनि गूँधी सुंदर भांति।
गोरे भाल बिंदु चंदन मनौ इंदु प्रात रबि कांति।
सारी चीरि नई फरिया लै अपनै हाथ बनाइ।
अंचल सौं मुख पोंछि अंग सब आपुहिं लै पहिराइ।
तिल चांवरी बतासे मेवा दियौ कुँवरि की गोद।
सूर स्याम राधा तन चितवति जसुमति मन मन मोद॥ १३५॥

राधे महरि सौं कहि चली।
आनि खेलौ रहसि प्यारी स्याम तुम हिलमिली।
बोलि उठे गुपाल राधा सकुच जिय कत करति।
मैं बुलाऊँ नहीं आवति जननि कौं कत डरति।
मात जसुदा देखि तोकौं करति कितनौ छोह।
सुनत हरि की बात प्यारी रही मुख तन जोहि।
हँसि चली बृषभानु तनया भई बहुत अबार।
सूर प्रभु चित तैं टरत नहिं गई घर कैं द्वार॥ १३६॥

---

१३४. करौं तेरी चोटी = तेरी वेणी बना दूँ। कहति . . . जोटी = कहती हैं कि तेरी मा और मैं दोनों जोड़ी या मित्र हैं।

१३५. सीमंत = सिर के मध्य का भाग जहाँ माँग बनाई जाती है। निरुवारति = ऐंछती है। फरिया = ओढ़नी। तिल चाँवरी = तिल और चावल जो सौभाग्य के सूचक माने जाते हैं।

१३६. रहसि = सुख-पूर्वक। छोह = स्नेह।

बूझति जननि कहा हुति प्यारी।
किन तेरैं भाल तिलक रचि कीन्हौ किहिँ कच गूंदि मांग सिर पारी।
खेलत रही नंद के आंगन जसुमति कहीं कुंवरि ह्यां आ री।
तिल चांवरी गोद करि दीन्ही फरिया दई फारि नव सारी।
मेरौ नाँव बूझि बाबा कौ तेरौ बूझि दई हँसि गारी।
मो तन चितै, चितै ढोटा तन, कछु सबिता सौं गोद पसारी।
यह सुनिकै बृषभान मुदित चित हँसि हँसि बूझत बात दुलारी।
सूर सुनत रस सिंधु बढ्यौ अति दंपति मन में यहै बिचारी ॥१३७॥

मेरे आगें महरि जसोदा मैया री तोहिं गारी दीन्ही।
वाकी बात सबै मैं जानति वै जैसी तैसी मैं चीन्ही।
तो कौं कहि पुनि कह्यौं बबा कौं बड़ौ धूत बृषभानु।
तब मैं कह्यौ ठग्यौ कब तुमकौं हँसि लागी लपटान।
भली कही तैं मेरी बेटी लयौ आपनौ दाउँ।
जो मोहि कह्यौ सबै उनके गुन हँसि हँसि कहति सुभाउ।
फेरि फेरि बूझति राधा सौं सुनत हँसतिँ सब नारि।
सूरदास बृषभानुघरनि जसुमति कौं गावति गारि ॥ १३८ ॥

वंशी-वादन

जब हरि मुरली अधर धरत।
खग मोहे मृगयूथ भुलाने निरखि मदन छबि छरत।
पसु मोहे सुरभीहू थकीं तृन दंतहि टेक रहत।

---

१३७. हुति = थी। कच = केश। सविता = सूर्य। गोद पसारी = भिक्षा माँगी, प्रार्थना की।

१३८. धूत = चंचल और ठग। ठग्यौ कब तुमकौं = तुम्हें कब ठगा। (हास्य में)। दाउँ = बदला।

१३९. मदन . . .छरत = कामदेव भी छले जाते हैं।

सुक सनकादि सकल मन मोहे ध्यानिहुँ ध्यान बहत।
सूरजदास भाग हैं तिनके जे या सुखहिं लहत॥ १३९॥

अंगनि की सुधि बिसरि गई।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका चकित नारि भई।
जो जैसें सो तैसे रहि गईं सुख दुख कह्यौ न जाइ।
लिखी चित्र-सी सूर सो रहि गई एकटक पल बिसराइ॥१४०॥

स्याम हृदय बर मोतिनि माला। बिथकित भई निरखि ब्रजबाला।
स्रवन थके सुनि बचन रसाला। नैन थके दरसन नँदलाला।
कंबु कंठ भुज नैन बिसाला। कर केयुर कंचन नग जाला।
पल्लव हस्त मुद्रिका भ्राजै। कौस्तुभ मनि हृदयस्थल छाजै।
रोमावली वरनि नहिं जाई। नाभिस्थल की सुंदरताई।
कटि किंकिनी चंद्रमनि संजुत। पीतांबर कटि तट छबि अद्‌भुत।
जुगल जंघ की पटतर को है। तरुनी मन धीरज कौं जोहै।
जानु जानु की छबि न सम्हारैं। नारि निकर मन बुद्धि बिचारैं।
रतन जटित कंचन कल नूपुर। मंद मंद गति चलत मधुर सुर।
जुगल कमल पद नख मनि आभा। संतनि मन संतत यह लाभा।
जो जेहिं अंग सो तहाँ भुलानी। सूर स्याम गति काहुँ न जानी॥१४१॥

देखि री देखि आनँद कंद।
चित्त चातक प्रेमघन, लोचन चकोरनि चंद।

---

१३९. ध्यान बहत = ध्यान टल जाता है।
१४१. कंबु = शंख। कौस्तुभ = पुराणों में उल्लेख किया गया एक रत्न। धीरज कौं जोहै = धैर्य की परीक्षा करते हैं। जानु . . . सम्हार = जंघों की छबि का भार जंघे नहीं सम्हाल पाते।

चलित कुंडल गंड मंडल झलक ललित कपोल।
सुधा सर जनु मकर क्रीड़त इंदु डह डह डोल।
सुभग कर आनन समापै मुरलिका इहिं भाइ।
मनौ उनै अंभोज भाजन लेत सुधा भराइ।
स्याम देह दुकूल दुति छबि लसति तुलसी माल।
तडित घन संजोग मानौं सेनिका सुक जाल।
अलक अबिरल चारु हास बिलास भृकुटी भंग।
सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पंग॥ १४२॥

देखि माई सुंदरता कौ सागर।
बुधि बिबेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि, कटिपट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजति भँवर परत सब अंग।
नैन मीन मकराकृत कुंडल भुज बल सुभग भुजंग।
मुकुत माल मनौ मिली सुरसरी द्वै सरिता लिऐं संग।
मोर मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिनि नख चंद।
मनु अडोल बारिधि मैं बिंबित राका उडुगन बृन्द।
बदन चंद्रमंडल की सोभा अवलोकत सुख देति।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि स्री अरु सुधा समेति।

---

१४२. गंड मंडल = कनपटी। मकर = मगर (जलजीव)। इंदु.. डोल = चंद्रमा डोलता-सा है। (यहाँ कपोलों की उपमा चंद्रमा से दी गई है, जो कुंडलों की छाया पड़ने से डोलता-सा मालूम देता है।) अंभोज = कमल। भाजन = पात्र। अबिरल = घनी। भृकुटी भंग = भौंहों का बल खाना। मनसा पंग = मन से स्तब्ध हो गई।

१४३. अंबुनिधि = समुद्र। कटि.. तरंग = कटि का पीत वस्त्र ही उस समुद्र की लहर है। सुंदर चितवन और चलन (गति) ही भौंर है। नैन मीन हैं, कुंडल मकर है, बलिष्ठ भुजाएँ भुजंग हैं। मोतियों की माला, मानो गंगा दो नदियाँ (यमुना-सरस्वती) के साथ मिली हैं।

देखि सो रूप सकल गोपी जन रहीं बिचारि बिचारि।
तदपि सूर तरि सकीं न सोभा रहीं प्रेम पचिहारि॥ १४३ ॥

बने बिसाल हरि लोचन लोल।
चितै चितै हरि चारु बिलोकनि मानहुँ मांगत हैं मन ओल।
अधर अनूप नासिका सुंदर कुंडल ललित सुदेस कपोल।
मुख मुसकात महाछबि लागति स्रवन सुनत सुठि मीठे बोल।
चितवत रहतिँ चकोर चंद्र ज्यौं नैंकु न पलक लगावत डोल।
सूरदास प्रभु कैं बस ऐसै दासी सकल भई बिनु मोल॥१४४॥

तरुनी निरखि हरि प्रति अंग।
कोउ निरखि नख इंदु भूली कोउ चरन जुग रंग।
कोउ निरखि बपु रही थकि कोऊ निरखि जुग जानु।
कोउ निरखि जुग जंघ सोभा करति मन अनुमानु।
कोउ निरखि कटि पीत कछनी मेखला रुचिकारि।
कोउ निरखि हृद नाभि की छबि डारि तन मन वारि।
रुचिर रोमावली हरि कैं चारु उदर सुदेस।
मनौ अलि सेनी बिराजति बनै एकै भेस।
रहीं एकटक नारि ठाढ़ी करतिं बुद्धि बिचार।
सूर आगम कियौ नभ तैं जमुन सूच्छम धार॥ १४५ ॥

सखी री सुंदरता कौ रंग।
छिन छिन माँहि परति छबि औरै कमलनयन कैं अंग।

---

१४४. ओल = बंधक।

१४५. जुग रंग = दो रंगों के चरण (जावक लगे हुए)। मेखला = कर-धनी। सूर....धार = हरि के उदर में रुचिर रोमावली ऐसी शोभा पाती है मानो आकाश से यमुना की सूक्ष्म (पतली) धारा उतरी हो।

परिमित करि राख्यौ चाहति है लगि डोलनि हैं संग।
चलत निमेष विशेष जानियत भूलि भई मति भंग।
स्याम सुभग के ऊपर वारौं आली कोटि अनंग।
सूरदास कछु कहत न आवै गिरा भई गति पंग ॥ १४६ ॥

गोपी तजि लाज संग स्याम रंग भूलीं।
पूरन मुखचंद्र देखि नैन कुमुद फूलीं।
कीधौं नव जलद स्वाति चातक मन लाए।
किधौं नारि बूंद सीप हृदय हरष पाए।
रवि छवि कुंडल निहारि पंकज बिकसाने।
किधौं चक्रवाक निरखि अति ही रति माने।
कीधौं मृग जूथ जुरे मुरली धुनि रीझे।
सूर स्याम मुख निहारि छबि कैं रस भीजे ॥ १४७ ॥

स्याम कर मुरली अतिहि बिराजति।
परसति अधर सुधारस प्रगटति मधुर मधुर सुर बाजति।
लटकत मुकुट भौंह छबि मटकत नैन सैन अति छाजति।
ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर कोटि मदन छबि लाजति।
लोल कपोल झलक कुंडल की यह उपमा कछु लागति।
मानहुँ मकर सुधा सर क्रीडत आपु आप अनुरागत।
बृन्दाबन बिहरत नँदनंदन ग्वाल सखा सँग सोहत।
सूरदास प्रभु की छबि निरखत सुर नर मुनि सब मोहत ॥ १४८ ॥

---

१४६. परिमित.... संग = छबि को अलग करके रखना चाहती हूँ पर स्वयं ही उसके साथ-साथ लगी रहती हूँ (अतः अलग नहीं कर पाती)।

१४८. लटकत = झुकता है। छाजति = शोभा देती है। आपु आप = अपने में।

जब तैं बंसी स्रवन परी।
तब ही तैं मन और भयौ सखि मो तन सुधि बिसरी।
हौं अपने अभिमान रूप यौवन कैं गर्व भरी।
नैंकु न कह्यौ कियौ सुनि सजनी बादिहिं आपु ढरी।
बिनु देखैं अब स्याम मनोहर जुग भरि जाति घरी।
सूरदास सुनु आरज पथ तैं कछू न चाड सरी॥ १४९॥

मुरली धुनि स्रवननि सुनि भवन न रह्यौ परै।
ऐसी को चतुर नारि धीरज मन धरै।
खग मृग तरु सुर नर मुनि सिव समाधि टरै।
अपनी गति तजी पौन सरितहु न ढरै।
मोहन के मन कौ सो अपने बस करै।
सूरदास सप्त सुरन सिंधु सुधा भरै॥ १५०॥

मुरली मोहे कुंवर कन्हाई।
अचवति अधर-सुधा बस कीन्हे अब हम कहा करैं कहि माई।
सरबसु हरयौ कबहुँ को ऐसे रहत न देति अघाई।
गाजति बाजति चढ़ी दुहूँ कर अपने सब्द न सुनति पराई।
जिहिं तन अनल दह्यौ कुल अपनौ तासौं कैसें होति भलाई।
अब कहि सूर कौन बिधि कीजै बन की ब्याधि माझ घर आई॥१५१॥

मुरली तऊ गोपालहि भावति।
सुनि री सखी जदपि नँदनंदन नाना भांति नचावति।

---

१४९. बादिहि = व्यर्थ ही। आरज पथ = लोक-मर्यादा। चाड सरी = कार्यसिद्धि हुई।

१५०. सप्त सुरन = सातों स्वरों में सुधा का समुद्र भरती है।

१५१ गाजनि = (गर्व से) गरजती है। बन की ब्याध = बाँसुरी जो बाँस की बनती है। बांस बन को जलानेवाले प्रसिद्ध हैं।

राखति एक पाइ ठाढ़े करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अँग आज्ञा करवावति कटि टेढ़ी ह्वै आवति।
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर कर सौं पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट हम पर कोप कुपावति।
सूर प्रसन्न जानि एकहुँ छन अधर सुसीस डोलावति ॥१५२॥

सखी री मुरली लीजै चोरि।
जिन गोपाल कीन्हे अपनैं बस प्रीति सबनि की तोरि।
छिन इक घोरि फेरि वसुतासुर धरत न कबहूँ छोरि।
कबहूँ कर अधरनि पर कबहूँ कटि मैं खोंसत जोरि।
ना जानौं कछु मेलि मोहिनी राखी अंग अँजोरि।
सूरदास प्रभु कौ मन सजनी बँध्यौ राग की डोरि ॥१५३॥

ऐसौ गोपाल निरखि तन मन धन वारौं।
नव किसोर मधुर मूरति सोभा उर धारौं।
अरुन तरुन कमल नैन मुरली कर राजै।
ब्रजजन मनहरन बैनु मधुर मधुर बाजै।
ललित त्रिभंग सुंदर तन बनमाला मोहै।
अति सुदेस कुसुम पाग उपमा कौं को है।
चरन रुनित नूपुर कटि किंकिनि कल कूजै।
मकराकृत कुंडल छबि सूर कौन पूजै ॥ १५४॥

---

१५२. कटि....आवति = कमर टेढ़ी हो जाती है। कनौड़े = भृत्य। नार = गर्दन। सूर....डोलावति = सूरदास कहते हैं कि एक क्षण भी श्याम को हम पर प्रसन्न हुआ जानकर वह उनके अधर फड़का देती है और सिर डुला देती है (बंशी बजाते हुए अधर काँपते और सिर हिलता है, मानो कृष्ण हम पर क्रोध कर उठते हैं)

१५३. अँजोरि = बटोरकर। राग = १. संगीत, २. प्रेम।

अलकनि की छवि अलिकुल गावत।
खंजन मीन मृगज लज्जित भए नैन नचावनि गतिहि न पावत।
मुख मुसकानि आनि उर अंतर अंबुज बुधि उपजावत।
सकुचत अरु बिगसत वा छबि पर अनुदिन जनम गँवावत।
पूरत नहीं सुभग स्यामल कौं जद्यपि जलधर ध्यावत।
बसन समान होत नहि हाटक अगिनि झाँप दै आवत।
मुकतादाम बिलोकि बिलखि करि अवलि बलाक बनावत।
सूरदास प्रभु ललित त्रिभंगी मनमथ मनहिं लजावत ॥१५५॥

श्री राधा का यशोदा के घर पुनरागमन

सुता महर बृषभान की नँद सदनहि आई।
गृह द्वारें ही अजिर मैं गो दुहत कन्हाई।
स्याम चितै मुख राधिका मन हरष बढ़ाई।
राधा हरि मुख देखि कै तन सुरति भुलाई।
महरि देखि कीरति सुता तेंहि लियौ बुलाई।
दंपति कौ मुख देखि कै सूरज बलि जाई ॥ १५६ ॥

---

१५५. अलिकुल = भौरों के दल। अंबुज = कमल। कृष्ण की मुसक्यान को हृदय में सोचकर कमल सकुचाते (लज्जा से) और खिलते (हर्ष से) रहते हैं। जलधर = बादल। बादल चेष्टा करते हैं पर स्याम के सुभग वर्ण को नहीं पाते। अगिनि झाँप दै = अग्नि में तपकर। हाटक = स्वर्ण। मुकुतादाम.. = मुक्ता माला को देखकर बलाका पक्षी खिन्न हो जाता है, समता करने के लिए वह अपना दलबल इकट्ठा करता है 'अवलि' बनाता है (पर व्यर्थ)।

१५६ अजिर = आँगन। कीरति सुता = राधा।

आजु राधिका भोर हीं जसुमति कैं आई।
महरि मुदित हँसि यौं कह्यौ मथि भान दोहाई।
आयसु लै ठाढ़ी भई कर नेति सुहाई।
रीतौ माट बिलोवई चित जहां कन्हाई।
उनके मन की कहा कहौं ज्यौं दृष्टि लगाई।
लेइ आन्यौ एक बृषभ सो गैया बिसराई।
नैननि में जसुमति लखी दुहुँ की चतुराई।
सूरदास दम्पति दसा बरनी नहिं जाई॥ १५७॥

महरि कह्यौ, री लाडिली केहि मथन सिखायौ।
कहुँ मथनी कहुँ माट है चित कहां लगायौ।
अपने घर यौंही मथै करि प्रगट दिखायौ।
की मेरै घर आइकै ह्यां सब बिसरायौ।
मथन नहीं मोहिं आवई तुम सौंह दिवायौ।
तेहि कारन मैं आइकै तुव बोल रखायौ।
तब नँद घरनी मथि दह्यौ इहि भाति बतायौ।
सूर निरखि मुख स्याम कौ तहँ ध्यान लगायौ॥ १५८॥

दुहत स्याम गैयां बिसराईं।
नोआ लै पग बांधि बृषभ कौ दोहनि मांगत कुंवर कन्हाई।
ग्वाल एक दोहनि लै दीन्ही दुहौ स्याम अति करौ चँडाई।
हँसत परसपर तारी दै दै आजु कहा तुम रहे भुलाई।
कहत सखा हरि सुनत नहीं सो प्यारी सौं रहे चित अरुझाई।
सूर स्याम राधा तन चितवत बड़े चतुर की गइ चतुराई॥ १५९॥

---

१५७. मथि भान दोहाई = बृषभानु की शपथ, तू दही मथ।
१५८. लाडिली = प्यारी (विनोद से); लड़ैती। तुव बोल रखायौ = तुम्हारी बात रक्खी।
१५९. नोआ = गाय का पैर बाँधने की रस्सी।

राधा ये ढंग हैं री तेरे।
वैसे हाल मथत दधि कीन्हे हरि मनो लिखे चितेरे।
तेरौ मुख देखत ससि लाजै और कहौ को बाँचै।
नैना तेरे जलज जिते हैं खंजन ते अति नाचैं।
चपला तैं चमकति अति प्यारी कहा करौगी स्यामहिं।
सुनहु सूर ऐसैं दिन खोवति काज नहीं तेरे धामहिं? ॥१६०॥

बार बार तू जनि ह्यां आवै।
मैं कहा करौं सुतहिं नहिं बरजति घर तैं मोहिं बोलावै।
मो सौं कहत तोहिं बिन देखैं रहत न मेरौ प्रान।
छोह लगति मोकौं सुनि बानी महरि तुम्हारी आन।
मुँह पावति तबही लौं आवति औरै लावति मोहिं।
सूर समुझि जसुमति उर लाई हँसति कहति हौं तोहि ॥१६१॥

हँसति कह्यौ मैं तो सौं प्यारी।
मन मैं कछू बिलगु जनि मानहु मैं तेरी महतारी।
बहुतै दिवस आज तू आई राधा मेरैं धाम।
महरि बड़ी मैं सुघरि सुनी है कछु सिखयौ गृहकाम?
मैया जब मोहिं टहल कहति कछु खिझत बबा बृषभान।
सूर महरि सौं कहति राधिका मानौ अतिहिं अजान॥ १६२॥

---

१६०. खंजन ते अति = खंजन की अपेक्षा अधिक चंचल हैं। काज नहीं तेरे धामहिं = क्या तेरे घर पर कोई काम नहीं है (विनोद से)।

१६१. औरै लावति मोहिं = मुझ पर तुम कुछ और ही दोषारोपण करती हो। आन = शपथ। मुँह पावति = इच्छा देखती हूँ। हँसति = विनोद।

१६२ सुघरि = कुशल, निपुण, दक्ष। टहल = गृहस्थी का काम।

सैन दै प्यारी लई बोलाइ ।
खेलन कौ मिस करिकै निकस खरिकहिं गए कन्हाइ ।
जसुमति कौं कहि प्यारी निकसी घर कौ नाउँ सुनाइ ।
कनक दोहनी लिए तहँ आई जहँ हलधर कौ भाइ ।
तहाँ मिलीं सब संग सहेली कुँवरि कहाँ तू आइ ।
प्रातहिं धेनु दुहावन आई अहिर नहीं कोउ पाइ ।
तबहिं गई मैं ब्रज उतावली ल्याई ग्वाल बुलाइ ।
सूर स्याम दुहि देन कह्यौ सुनि राधा गइ मुसुकाइ ॥१६३॥

मोहन कर तैं दोहनि लीन्ही गोपद बछरा जोरे ।
हाथ धेनु थन वदन त्रिया तन छीर-छाछि छल छोरे ।
आनन रहीं ललित पय छीटैं छाजति छबि तृन तोरे !
मनु निकसे निकलंक कलानिधि दुग्ध सिंधु के बोरे ।
दै घूंघट पट ओट नील हँसि कुंवरि मुदित मुख मोरे ।
मनौ सरद ससि कौं मिलि दामिनि घेरि लियौ घन घोरे ।
इहिं बिधि रहसत बिलसत दंपति हेत हियैं नहिं थोरे ।
सूर उमँगि आनंद सुधानिधि मनौ विलावल फोरे ॥१६४॥

धेनु दुहत अतिहीं रति बाढ़ी ।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी ।

---

१६३. जसुमति . . . सुनाइ = राधा यशोदा से यह कहकर चली कि मैं घर जा रही हूँ । सूर . . . कह्यौ = गोपियों ने पूछा, क्या श्याम ने दुह देने को कहा है ? यह सुनकर राधा मुस्कुरा उठी ।

१६४. छीर-छाछि छल छोरे = चालाकी से दूध की धार राधा के मुख पर छोड़ी । तृन तोरे = लज्जित होकर । मनु . . . बोरे = मानो क्षीरसमुद्र में डूबे हुए निष्कलंक चंद्रमा उदय हुए ।

भाहन कर तैं धार चलत पय मोहनि मुख अति हीं छबि गाढ़ी।
मनौ जलधर जलधार वृष्टि लघु पुनि पुनि प्रेम चंद पर बाढ़ी।
सखी संग निरखत यह छबि भईं व्याकुल मनमथ की डाढ़ी।
सूरदास प्रभु के बस भईं सब भवन काज तैं भईं उचाड़ी ॥१६५॥

हरि सौं धेनु दुहावनि प्यारी।
करति मनोरथ पूरन मन बृषभानु महर की बारी।
दूध धार मुख पर छबि लागति सो उपमा अति भारी।
मानौ चंद कलंकहिं धोवत जहँ तहँ बूँद सु धारी।
हाव भाव रस मगन द्वै दोऊ छबि निरखति ललिता री।
गौ दोहन सुख करत सूर प्रभु तीनिहुँ भुवन कहा री ॥१६६॥

दुहि दीनी राधा की गैया।
दोहनि नहीं देत करतैं हरि हा हा करति परति है पैया।
ज्यौं ज्यौं प्यारी हा हा बोलति त्यौं त्यौं हँसत कन्हैया।
बहुरि करौ प्यारी तुम हा हा दैहौं नंद दुहैया।
तब दीन्ही प्यारी कर दोहनि हा हा बहुत करैया।
सूर स्याम रस हाव भाव करि दीन्ही कुंवरि पठैया ॥१६७॥

चीर-हरण

ब्रज घर गइ गोप कुमारि।
नैकुंहूँ कहूँ मन न लागत काम धाम बिसारि।

---

१६५ मनौ . . .बाढ़ी = मानो जलधर (श्याम) से जलधार निकलकर बार-बार प्रेमपूर्वक चंद्रमा की ओर बढ़ रही हो। वृष्टि लघु = हल्की वर्षा। उचाड़ी = उचाट, बमन, उन्मन।
१६६. मानौ . . . धारी = मानो चंद्रमा अपना कलंक धो रहा हो, वही बूँदें जहाँ-तहाँ पड़ी हुई हैं।
१६७ हा हा बोलति = दीनता और आग्रहपूर्वक माँगती है।

मात पितु कौ डर न मानति सुनति नाहीं गारि।
हठ करति बिरुझाति तब जिय जननि जानति बारि।
प्रातहीं उठि चलीं सब मिलि जमुनतट सुकुमारि।
सूर प्रभु ब्रत देखि इनकौं नहि न परत सँभारि ॥१६८॥

अति तप करति घोषकुमारि।
कृष्न पति हम तुरत पावैं कामना करैं नारि।
नैन मूँदति दरस कारन स्रवन सब्द बिचारि।
भुजा जोरति अंक भरि हरि ध्यान उर अँकवारि।
सरद ग्रीषम डरति नाहीं करतिं तप तनु गारि।
सूर प्रभु सर्वज्ञ स्वामी देखि रीझे भारि ॥१६९॥

ब्रज बनिता रबि कौं कर जोरैं।
सीत भीत नहिं करतिं छहौं रितु त्रिबिध काल जल खोरैं।
गौरीपति पूजतिं तप साधतिं करति रहतिं नित नेम।
भोग रहित निसि जाग चतुरदसि जसुमति सुत कैं प्रेम।
हमकौं देहु कृष्न पति ईस्वर और नहीं मन आन।
मनसा बाचा क्रमना हमरैं सूर स्याम कौ ध्यान ॥१७०॥

नीकैं तप कियौ तनु गारि।
आपु देखत कदम पर चढ़ि मानि लई मुरारि।

१६८—तब . . . बारि = तब माता समझती है कि यह अभी बच्ची है, बाल-हठ करती है।

१६९. नैन . . . अँकवारि = दर्शन के लिए आँखें मूँदतीं, श्रवणों से शब्द सुनना चाहतीं और आलिंगन का ध्यान करके, अपनी भुजाओं को (आलिंगन की मुद्रा में) जोड़ती हैं। तनु गारि = शरीर को गलाकर।

१७०. खोरैं = स्नान करती हैं।

बर्ष भर ब्रत नेमि संजम स्रम कियौ मोहिं काज।
कैसेंहु मोहिं भजै कोऊ मोहिं बिरद की लाज।
धन्य ब्रत इन कियौ पूरन सीत तपनि निवारि।
कामना करि भजें मोकौं नव तरुनि ब्रज नारि।
कृपानाथ कृपाल भए तब जानि जन की पीर।
सूर प्रभु अनुमान कीन्हौ हरौं इनकौ चीर ॥१७१॥

आपु कदम चढ़ि देखत स्याम।
बसन अभूषन सब हरि लीन्हे बिना बसन जल भीतर बाम।
मूंदतिं नयन ध्यान धरि हरि कौ अन्तरजामी लीन्हौ जान्हि।
बार बार सविता सौं बिनवैं हम पावैं पति सुन्दर कान्ह।
जल तैं निकसि आइ तट देख्यौ भूषन चीर तहाँ कछु नाहि।
इत उत हेरि चकित भईं सुन्दरि सकुचि गईं फिरि जलही माहिं।
नाभि प्रजंत नीर मैं ठाढ़ी थर थर अंग कँपतिं सुकुमारि।
को लै गयौ बसन आभूषन सूर स्याम उर प्रीति बिचारि ॥१७२॥

आवहु निकसि घोषकुमारि।
कदम पर तैं दरस दीन्हौ गिरिधरन बनवारि।
नैन भरि ब्रत फलहिं देख्यौ फरचौ है द्रुमडार।
ब्रत तुम्हारौ भयौ पूरन कह्यौ नंद कुमार।
सलिल तैं सब निकसि आवहु बृथा सहतिं तुषार।
देत हौं किन लेहु मो सौं चीर चोली हार।
बाँह टेकि बिनय करौ मोहिं कहत बारंबार।
सूर प्रभु कह्यौ मेरे आगें आइ करहु सिंगार ॥१७३॥

---

१७१. बिरद = यश, बाना। सीत तपनि = शीत और घाम।
१७३. नैन . . . डार = आँख भरकर ब्रत के फल (श्रीकृष्ण) को देखा जो कदम्ब की डाल पर बैठे हुए थे।

दृढ़ ब्रत कियौ मेरैं हेत ।
धन्य धनि कह्यौ नंदनंदन जाहु सबै निकेत।
करौं पूरन काम तुम्हरौ सरद रास रमाइ।
हरष भईं यह सुनत गोपी रहीं सीस नवाइ।
सबनि कौ अँग परस कीन्हौ ब्रत कियौ तनु गारि ।
सूर प्रभु सुख दियौ मिलि कै ब्रज चलीं सुकुमारि ॥१७४॥

पनघट-प्रसंग

पनघट रोकेहिं रहत कन्हाइ ।
जमुना जल कोउ भरन न पावति देखत ही फिरि जाइ।
तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई आपुन रहे छपाइ।
तहं ठाढ़े जे सखा सँग के तिनकौं लिए बुलाइ।
बैठारे ग्वालनि कौं द्रुम तर आपुन फिरि फिरि देखत।
बड़ी बार भई कोउ न आई सूर स्याम मन लेखत ॥१७५॥

युवति इक आवत देखी स्याम।
द्रुम कैं ओट रहे हरि आपुन जमुना-तट गई बाम ।
जल हलोरि गागरि भरि नागरि जबहीं सीस उठायौ।
घर कौं चली जाइ ता पाछै सिर तैं घट ढरकायौ।
चतुर ग्वालि कर गह्यौ स्याम कौ कनक लकुटिया पाई।
औरनि सौं करि रहे अचगरी मो सौं लगत कन्हाई।
गागरि लै हँसि देति ग्वालि कर रीतौ घट नहिं लैहौं।
सूर स्याम ह्या आनि देहु भरि तबहिं लकुट कर दैहौं ॥१७६॥

---

१७४. सरद रास रमाइ = शरत्काल मे रास रचकर।
१७५. उपाई = निकाली, उपार्जित की, सोची। लेखत = विचार करते है।
१७६. मो सौं लगत = मुझे छेड़ते हो।

घट भरि देहु लकुट तब दैहौं।
हम हू बड़े महर की बेटी तुमकौं नहीं डरैहौं।
मेरी कनक लकुटिया दैरी मैं भरि दैहौं नीर।
बिसरि गई सुधि ता दिन की तोहिं हरे सबनि के चीर।
यह बानी सुनि ग्वारि बिबस भ ̮ तन की सुधि बिसराइ।
सूर लकुट कर गिरत न जानी स्याम ठगौरी लाइ ॥१७७॥

घट भरि दियौ स्याम उठाइ।
नैकुं तन की सुधि न ताकौं चली ब्रज समुहाइ।
स्यामसुन्दर नयन भीतर रहे आइ समाइ।
जहां जहँ भरि दृष्टि देखै तहां तहां कन्हाइ।
उतहि तैं एक सखी आई कहति कहा भुलाइ!
सूर अब हीं हँसत आई चली कहा गवाँइ ॥१७८॥

आवत ही जमुना भरे पानी।
स्याम बरन काहू कौ ढोटा निरखि बदन घर गई भुलानी।
उन मो तन मैं उन तन चितयौ तब ही तैं उन हाथ बिकानी।
उर धकधकी टकटकी लागी तन ब्याकुल मुख फुरति न बानी।
कह्यौ मोहन मोहनि तू को है या ब्रज मैं नहिं मैं पहचानी।
सुरदास प्रभु मोहन देखत जनु बारिधि जल बूंद हिरानी ॥१७९॥

नीकें देहु न मेरी गेंडुरी।
लै जैहौं धरि जसुमति आगें आवहु री सब मिलि एक झुंड री।

---

१७७. सूर...लाइ = गोपी ने लकुट हाथ से गिरते नहीं जाना, श्याम ने इस प्रकार उसे मोहित कर दिया।

१७८. चली कहा गवाँइ = क्या खोकर जा रही है? तू कुछ भूली हुई-सी है ।

१७९. फुरति = स्फुरित होना, साफ़-साफ़ शब्द निकलना। जनु.... हिरानी = मानो बूँद समुद्र के जल में खो गई ।

काहूं नही डरात कन्हाई बाट घाट तुम करत अचगरी।
जमुना दह गेंडुरी फटकारी अरु फोरी सब सिर की गगरी।
भली करी यह कुँवर कन्हाई आजु मेटिहौं तुम्हरी लँगरी।
चलीं सूर जसुमति के आगैं उरहन लै तरुनी ब्रज सिगरी ॥१८०॥

सुनहु महरि तेरौ लाडिलौ अति करत अचगरी।
जमुन भरन जल हम गईं तहँ रोकत डगरी।
सिर तैं नीर ढरावई फोरी सब गगरी।
गेंडुरि दइ फटकारि कै हरि करत हैं लँगरी।
नित प्रति ऐसेइ ढँग करै, हम सौं कहै अगरी।
अब बसवास नहीं बनै इहिँ तुव ब्रज नगरी।
आपु गयौ चढ़ि कदम हीं चितवत रहिं सगरी।
सूर स्याम ऐसैंहि सदा हम सौं करै झगरी ॥१८१॥

मैं जानति हौं ढीठ कन्हैया।
आवन तौ घर देहु स्याम कौं जैसी करौं सजैया।
मो सौं करत ढिठाई मोहन मैं वाकी हौं मैया।
और न काहू कौं वह मानत कछु सकुचत बल भैया।
अब जौ जाउँ कहां तेहिँ पावौं का सौं देइ धरैया।
सूर स्याम दिन दिन लंगर भयौ दूरि करौं लँगरैया ॥१८२॥

जसुमति यह कहि कै रिस पावत।
रोहिनि करति रसोई भीतर कहि कहि तिनहिं सुनावति।

---

१८०. गेंडुरी = घड़े के नीचे, सिर पर रखने की मंडलाकार रस्सी। अक्सर यह पयाल की बनती है। फटकारी = फेंक दी। लँगरी = उद्धतपन।

१८१. डगरी = रास्ता। हम... अगरी = तू हमसे कहती है 'अगरी' चंट या होशियार। बसवास = साथ का रहना।

१८२. देइ धरैया = पकड़ाई देगा।

गारी देत बहू बेटिन कौं वे धाई ह्यां आवति।
हा हा करति सबनि सौं मैं ही कैसैंहु खूंट छँडावति।
जाति पांति सौं कहा अचगरी यह कहि सुतहिं धिरावति।
सूर स्याम कौं सिखवत हारी मारेहुँ लाज न आवति ॥१८३॥

तू मोही कौं मारन जानति।
उनके चरित कहा कोउ जानै उनहि कही तू मानति।
कदम तीर तैं मोहिं बुलायौ गढ़ि गढ़ि बातैं बानति।
मटकत गिरी गागरी सिर तैं अब ऐसी बुधि ठानति।
फिरि चितई तू कहां रह्यौ कहि मैं नहि तो कौं जानति।
सूर सुतहिं देखत ही रिस गई मुख चूमति उर आनति ॥१८४॥

झूठैंहि सुतहिं लगावतिं खोरि।
मैं जानति उनके ढँग नीकैं बातैं मिलवतिँ जोरि।
वे यौवन मद की सब माती कहँ मेरौ तनक कन्हाई।
आपुहि फोरि गागरी सिर तैं उरहन लीन्हैं आई।
तू उनकैं ढिग जात कितहिं है वै पापिनि सब सारि।
सूर स्याम अब कह्यौ मानि तू हैं सब ढीठ गुवारि ॥१८५॥

राधा सखियनि लई बुलाइ।
चलहु जमुना जलहिं जैयै चलीं सब सुख पाइ।
सबनि एक एक कलस लीन्हौ तुरत पहुँची जाइ।
तहां देख्यौ स्यामसुन्दर कुँवरि मन हरषाइ।

---

१८३. खूंट छँडावति = पल्ला छुड़ाती हूँ; निबटती हूँ। जाति पांति सौं = अपनी जातिवालों से। धिरावति = धमकी देती है।
१८४. गढ़ि गढ़ि = रच-रच कर।
१८५. बातैं मिलवतिँ जोरि = गढ़कर झूठी बाते करती हैं। सब सारि = सबकी सब; सब सारी।

नंद नंदन देखि रीझे चितै रहे चित लाइ।
सूर प्रभु की प्रिया राधा भरति जल मुसकाइ ॥१८६॥

घरहिं चली जमुना जल भरि कै।
सखिनि बीच नागरी बिराजति भई प्रीति उर हरि कैं।
मंद मंद गति चलत अधिक छबि अंचल रह्यौ फहरि कै।
मोहन कौं मोहिनी लगाई संगहिं चले डगरि कै।
बेनी की छबि कहत न आवै रही नितंबनि ढरि कै।
सूर स्याम प्यारी कैं बस भए रोम रोम रस भरि कै ॥१८७॥

गागरि नागरि जल भरि आवै।
सखियन बीच, भरयौ घट सिर पर, तापर नैन चलावै।
डुलति ग्रीव लटकति नक बेसरि मंद मंद गति आवै।
भृकुटी धनुष कटाच्छ बान मनौ पुनि पुनि हरिहिं लगावै।
जाकौं निरखि अनंग अनंगत ताहिं अनंग बढ़ावै।
सूर स्याम प्यारी छबि निरखत आपुहि धन्य कहावै ॥१८८॥

परयौ तब तैं ठग मूरि ठगौरी।
देख्यौ मैं जमुना तट बैठौ ढोटा जसुमति कौ री।
अति सांवरौ भरयौ सो सांचैं कीन्हे चंदन खौरी।
मनमथ कोटि कोटि गहि वारौं ओढ़े पीत पिछौरी।
दुलरी कंठ नैन रतनारे मो मन चितै हरौ री।
बिकट भृकुटि की ओर कोर तैं मनमथ बान धरौ री।
दमकत दसन कनक कुंडल मुख मुरली गावत गौरी।
स्रवन न सुनत देह गति भूली भई बिकल मति बौरी।

---

१८८. अनंग अनंगत = कामदेव भी निष्प्रभ हो जाता है।
१८९. ठग मूरि = ठग लेनेवाली (मुग्ध या वशीभूत करनेवाली) बूटी। भरयौ सो सांचै = सांचे मे ढला हुआ-सा।

नहिँ कल परत बिना दरसन तैं नैननि लगी ठगौरी ।
सूर स्याम चित टरत न नैकहुँ निसिदिन रहत लगौ री ।।१८९।।

मेरौ हरि नागर सौं मन मान्यौ ।
मन मोह्यौ सुन्दर ब्रज नायक भली भई सब जान्यौ ।
बिसरी देह गेह सुधि बिसरी बिसरि गई कुल कान्यौ ।
सूर आस पूजै या मन की तब भावै भोजन पान्यौ ।।१९०।।

मेरें जिय ऐसी आनि बनी ।
बिनु गोपाल और नहिं जानौं सुनि मोसौं सजनी ।
कहा कांच संग्रह के कीन्हैं हरि जु अमोल मनी ।
बिष सुमेरु कछु काज न आवै अमृत एक कनी ।
मन बच क्रम मोहिँ और न भावै अब मेरे स्याम धनी ।
सूरदास स्वामी कैं कारन तजी जाति अपनी ।।१९१।।

अब दृढ़ करी धरी यह बानि ।
कहा कीजै सो नफा जेहिँ होइ जिय की हानि ।
लोक लज्जा काच किरिचक स्याम कञ्चन खानि ।
कौन लीजै कौन तजिऐ सखि तुमहि कहौ जानि ।
मोहिँ तौ नहिँ और सूझत बिना मृदु मुसकानि ।
रंग काथै होत न्यारौ हरद चूनौ सानि ।

---

१९०. मन मान्यौ = मन वशीभूत हो गया । सब जान्यौ = सब लोग जान गये । कुल कान्यौ = कुल का संकोच भी । पूजै = पूरी हो ।

१९१. ऐसी आनि बनी = यह बात जम गई है । बिष... कनी = एक कनी अमृत की सब कुछ है; विष का पहाड़ किस काम का ?

१९२. नफा = लाभ (मर्यादा आदि का) । जिय = जीवन, प्राण । काच किरिचक = काँच कीले (तुच्छता की सूचना ।)

इहै करिहौं और तजिहौं परी ऐसी बानि।
सूर प्रभु पतिबरत राखैं मेटि कै कुल कानि ॥१९२॥

गोवर्द्धन-पूजन

बाजति नंद अवास बधाई।
बैठे खेलत द्वार आपनैं सात बरस के कुँवर कन्हाई।
बैठे नंद सहित वृषभानुहिँ और गोप बैठे सब आई।
थापैं देतिँ घरनि के द्वारैं गावतिँ मंगल नारि सुहाई।
पूजा करत इंद्र की जानी आये स्याम तहां अतुराई।
बूझत बार बार हरि नंदहिँ कौन देव की करत पुजाई।
इंद्र बड़े कुल-देव हमारे उनतैं सब यह होति बड़ाई।
सूर स्याम तुम्हरे हित कारन यह पूजा हम करत सदाई ॥१९३॥

गावत मंगलचार महर घर ।
जसुमति भोजन करति चँडाई नेवज करि करि धरति स्याम डर।
देखे रहौ न छुवै कन्हैया कहा जानै वह देव काज पर ।
और नहीं कुल देव हमारे कै गोधन कै वै सुरपति बर।
करति बिनय कर जोरि जसोदा कान्हहिँ कृपा करहु करुनाकर।
और देव तुम सरि कोउ नाहीं सूर करौं सेवा चरननि तर॥१९४॥

मेरौ कह्यौ सत्य कै जानौ ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई तौ गोबरधन मानौ ।

---

१९३. अवास = आवास, गृह। थापैं देति = हाथों के निशान बनाती हैं। होति बड़ाई = समृद्धि होती है।

१९४. नेवज = नैवेद्य, प्रसाद। देव काज पर = देवकार्य को, अनुष्ठान के महत्त्व को।

एक चले आवत ब्रज तन कौं एक ब्रज तैं बन काज।
सूरदास तहँ स्याम सबनि कौ देखियत हैं सिरताज ॥१९८॥

चलीं घर घरनि तैं ब्रजनारि।
मनौ इंद्रबधूनि पंगति सोभा लागति भारि।
पहिरि सारी सुरँग पँचरंग षटदसहूँ शृंगारि।
इहै इच्छा सबनि कै मन स्याम रूप निहारि।
ललिता चंद्रावली राधा सँग कारति महतारि।
चले पूजा करन गिरि की सूर सँग नर नारि ॥१९९॥

विप्र बुलाइ लिए नँदराइ।
प्रथमारंभ जग्य कौ कीन्हौ उठे बेद धुनि गाइ।
गोबरधन सिर तिलक बंदियौ मेटि इंद्र ठकुराइ।
अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ गिरि की उपमा पाइ।
भाँति भाँति ब्यंजन परुसाए का पै बरन्यौ जाइ।
सूर स्याम कौं कहत ग्वाल गिरि जेंवहिं कहौ बुझाइ ॥२००॥

विनती करत सकल अहीर।
कलस भरि भरि ग्वाल लै लै सिखर डारत छीर।
चल्यौ बहि चहु पास ते पय सुरसरी जनु ढारि।
बसन भूषन लै चढ़ाए भीर अति नर नारि।
मूँदि लोचल भोग अरप्यौ प्रेम सौं रुचि भारि।
सबनि देखी प्रगट मूरति सहस भुजा पसारि।

---

१९८. सिरताज = प्रधान।

१९९. इंद्रवधूनि = बीरबहूटी। षटदसहूँ शृंगारि = सोलहो शृंगार करके।

२००. बंदियौ = निवेदन किया; अर्पण किया।

२०१. छीर = दूध। सुरसरी जनु ढारि = मानो गंगा ढल चली हों।

रुचि सहित गिरि सबनि आगें करनि लै लै खाइ।
नंद सुत महिमा अगोचर सूर क्यौं कहै गाइ ॥२०१॥

गिरिबर स्याम की अनुहारि।
करत भोजन अति अधिकई भुजा सहस पसारि।
नंद कौ कर गहे ठाढ़े इहै गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौं कहति देखि स्वरूप।
यहै कुंडल यहै माला यहै पीत पिछौरि।
सिखर सोभा स्याम की छबि, स्याम छबि गिरि जोरि।
नारि बदरौला रही बृषभानु घर रखवारि।
तहाँ तैं उहिं भोग अरप्यौ लियौ भुजा पसारि।
राधिका छबि देखि भूली स्याम निरखहि ताहि।
सूर प्रभु बस भई प्यारी कोर लोचन चाहि ॥२०२॥

चले ब्रज घरनि कौं नर नारि।
इंद्र की पूजा मिटाई तिलक गिरि कौं सारि।
पुलक अँग न समात उर मैं महर-महरि समाज।
अब बड़े हम देव पाए गिरि गोबर्धन राज।
इनहिं तैं ब्रज चैन रहि है मांगि भोजन खात।
यहै घैरा चलत ब्रजजन सबै मुख यह बात।
सबै सदननि आइ पहुँचे करत केलि बिलास।
सूर प्रभु यह करी लीला इंद्र रिस परकास ॥२०३॥

---

२०२. स्याम की अनुहारि = श्याम के ही रूप के हैं। सिखर... जोरि = शिखर ने श्याम की और श्याम ने शिखर (पर्वत) की शोभा धारण कर ली है।

२०३. सारि = लगाकर। इनहि... खात = ये ऐसे देवता हैं जो (प्रत्यक्ष) माँगकर भोजन करते हैं अतः इन्हें पाकर ब्रज सुखी होगा। घैरा = चर्चा। इंद्र... परकास = इंद्र का क्रोध उभाड़ने के लिए।

इंद्र का क्रोध

प्रथमहिं देउँ गिरिहिं बहाइ।
बज्र-घातनि करौं चूरन देउँ धरनि मिलाइ।
मेरी इन महिमा न जानी प्रगट देउँ दिखाइ।
जल बरषि ब्रज धोइ डारौं लोग देउँ बहाइ।
खात खेलत रहे नीकें करी उपाधि बनाइ।
सूर सुरपति कहत पुनि पुनि परौं ब्रज पर धाइ॥ २०४॥

सुनत मेघ बर्तक सजि सैन आए।
जलबर्त बरिबर्त पवनबर्त बज्रबर्त अग्निबर्तक जलद संग ल्याए।
घहरात तररात गररात हहरात पररात झहरात माथ नाए।
कौन ऐसौ काज बोले हम सुरराज प्रलय के साज हमकौं बुलाए।
बरष दिन संजोग देत मोकौं भोग छुद्रमति ब्रजलोग गर्ब कीन्हौ।
मोहिं गए बिसराइ पूज्यौ गिरिबर जाइ परौ ब्रज पर धाइ आयसु दीन्हौ।
कितक ब्रज के लोग रिस करत केहिं जोग गिरि लियौ जो भोग फल सो पैहै।
सूर सुरपति सुनौ बयौ जैसो लुनौ प्रभु कहा गुनौ गिरि सहित बैहै॥ २०५॥

मेघ दल प्रबल ब्रज लोग देखे।
चकित जहँ तहँ भए निरखि बादर नए ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखें।
ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अंधकाला।
चकित भए नंद सब महर चक्रित भए चकित नरनारि हरि करत ख्याला।

---

२०४. उपाधि बनाइ = जान-बूझकर आफ़त बुलाई। परौं ब्रज पर धाइ = ब्रज पर टूट पड़ूँगा।

२०५. मेघबर्तक = मेघ के अधिष्ठातृ देवता। प्रलय के साज हमकौं = हमको, जो प्रलय के साज हैं बुलाया। बयौ जैसौ लुनौ = जैसा बोया है वैसा ही काटे।

२०६. ख्याला = खिलवाड़।

घटा घन घोर घहरात अररात दररात सररात ब्रज लोग डरपैं।
तडित आघात तररात उतपात सुनि नारि नर सकुचि तन प्रान अरपैं।
कहा चाहत होन न भई कबहू जौन कबहुँ आंगन भौन बिकल डोलैं।
मेटि पूजा इंद्र नंद सुत गोबिंद सूर प्रभु आनंद करैं कलोलैं॥ २०६॥

गए बितताइ ब्रज नर नारि।
धरत सैंतत धाम बासन नाहि सुरति सम्हारि।
पूजि आए गिरि गोबर्धन दाँतैं पुरुषन गारि।
आपनौ कुलदेव सुरपति धरचौ ताहि बिसारि।
दियौ फल यह गिरि गोबर्धन लेहु गोद पसारि।
सूर कौन सम्हारि लैहै चढचौ इंद्र प्रचारि॥ २०७॥

ब्रज के लोग फिरत बितताने।
गैयनि लै बन ग्वाल गए ते धाए आवत ब्रजहिं पराने।
कोउ चितवत नभ तन चकित ह्वै कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने।
कोउ लै ओट रहत बृच्छन की अंधधुंध दिसि बिदिसि भुलाने।
कोउ पहुँचे जैसैं तैसैं गृह कोउ ढूढ़त गृह नहि पहिचाने।
सूरदास गोबर्धन पूजा कीन्हे कर फल लेहु बिहाने॥२०८॥

राखि लेहु गोकुल के नायक।
भीजत ग्वाल गाइ गोसुत सब बिषम बूंद लागत जनु सायक।

---

२०७. बितताइ = अस्तव्यस्त हो उठ, व्याकुल हो गये। सैंतत = सँभाल कर रखते हैं। गोद पसारि = प्रसन्नतापूर्वक (व्यंग्य से)।

२०८. अंधधुंध = आँधी का धुंधकार छा जाने से। बिहाने = प्रात:काल; तुरत (व्यंग्य से)।

२०९. सायक = शायक, बाण।

बरषत मुसलधार सैनापति महामघ मघवा के पायक।
तुम बिनु ऐसौ कौन नंद सुत यह दुख दुसह मिटावन लायक।
अघ-मरदन, वक-बदन-बिदारन, बकी-बिनासन सब सुख दायक।
सूरदास प्रभु ताकी यह गति जाकैं तुम से सदा सहायक ॥२०९॥

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धरि धीरज हरि कहत सबनि सौं गिरि गोवर्धन कियौ सहाइ।
नंद गोप ग्वालनि के आगें देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौं ब्याकुल भए डोलत रच्छा करी देवता आइ।
सत्य बचन गिरि देव कहत हैं कान्ह लेइ मोहिं कर उचकाइ।
सूरदास नारी नर ब्रज के कहत धन्य तुम कुंवर कन्हाइ ॥ २१०॥

गिरिबर धरौ सखा सब करतैं।
सब मिलि ग्वाल लकुटियनि टेकौ अपने अपने भुज के बर तैं।
सात दिवस मूसल जलधारा बरषत है निसि दिन अंबर तैं।
अतरिच्छ जल जात कहा ह्वै क्रोध सहित फिरि बरषत झरतैं।
गाइ गोप नंदादिक राख्यौ बृथा बूंद सब नैंकु न थरतै।
सूर गोपाल राखे गिरिबर तर गोकुल नरनारी ब्रजघर तैं ॥२११॥

बरषि बरषि ब्रजतन घन हेरत।
मेघबर्त अपनी सैना कौं खीझत है फिरि टेरत।
कहा बरषि अब लौं तुम कीन्हौ राखत जलहिं छपाइ।
मूसलधार बरषि जल पाटौ सात दिवस भए आइ।
रिस करि करि गरजत नभ बरषत चाहत ब्रजहिं बहाइ।
सूर स्याम गिरि गोबरधन धर्‌यौ ब्रजजन कौं सुखदाइ ॥ २१२ ॥

---

२०९. मघवा के पायक = इन्द्र के चाकर या सेवक।
२११. लकुटियनि = लाठियों से। बर = बल। झरतैं = झड़ी लगाकर।
थरतैं = स्थिर होते; टिकते।

कहा होत जल महाप्रलय कौ।
राख्यौ सैंति सैंति जेहिं कारज बच्यौ नहिं कहुँ मनकौ।
भुव पर एक बूंद नहिं पहुँची निझरि गए सब मेह।
बासर सात अखडित धारा बरषत हारे देह।
बरन भयौ बिन नीर सबनि कौ नाम रह्यौ है बादर॥
सूर चले फिरि अमरराज पै ब्रज तैं भए निरादर॥२१३॥

इंद्र का शरण आना

सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐरापति देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत।
अमरा सिव रबि ससि चतुरानन हय गय बसह हंस मृग जावत।
धर्मराज बनराज अनल दिव सारद नारद सिवसुत भावत।
मेढा मढ़ी मगर गुडरारो मोर आखु मनवाह गनावत।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन हरि आगैं कहि कहि जु सुनावत।
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ आवत चल्यौ ब्रजहिं अतुरावत।
घैरा करत जहां तहँ ठाढ़े ब्रजबासिन कौं नहीं बचावत।
दूरहि तैं बाहन तैं उतरयौ देवनि सहित चल्यौ सिर नावत।
आइ परचौ चरननि तर आतुर सूरदास प्रभु सीस उठावत॥२१४॥

सुरगन करत अस्तुति मुखनि।
दरस तैं अनुताप खोयौ मेटि अघ के दुखनि।

---

२१३. सैंति = एकत्र करके; सँजोकर। मनकौ = लेशमात्र। निझरि = खाली हो जाना। हारे देह = शरीर से थक गये।

२१४. ऐरापति = इंद्र का हाथी, ऐरावत। बसह = बैल। जावत = जितने। मेढा = बड़ा भेड़ा। गुडरारौ = एक पक्षी (गरुड़)। आखु = चूहा।

२१५ अनुताप = ग्लानि; आत्मलज्जा।

अंग पुलकित रोम गद्गद कहत बानी मुखनि।
बाम भुज कर टेकि राख्यौ करज लघु के नखनि।
प्रेम कैं बस तुमहिँ कीन्हौ ग्वाल बालक सखनि।
जोगि जन बन तपनि जापनि नहीं पावत मखनि।
धन्य नँद धनि मातु जसुमति चलत जाके रुखनि।
सूर प्रभु महिमा अगोचर जाति कापै लखनि ॥२१५॥

दानलीला

नँदनंदन एक बुद्धि उपाइ।
जे जे सखा प्रकृति के जाने ते सब लए बुलाइ।
सुबल सुदामा स्रीदामा मिलि और महर सुत आए।
जो कछु मंत्र हृदयँ हरि कीन्हौ ग्वालनि प्रगटि जनाए।
ब्रज जुवती नित प्रति दधि बेचन बनि बनि मथुरा जाति।
राधा चंद्रावलि ललितादिक बहु तरुनी एक भांति।
कालिंदी तट कालि प्रात हीं द्रुम चढ़ि रहौ लुकाइ।
गोरस लै जब हीं सब आवैं मारग रोकहु जाइ।
भली बुद्धि यह रची कन्हाई सखनि कह्यौ सुख पाइ।
सूरदास प्रभु प्रीति हृदय की सब मन गए जनाइ ॥ २१६॥

ब्रज जुवती मिलि करतिँ बिचार।
चलौ आजु प्रातहिँ दधि बेचन नित तुम करतिँ अबार।
तुरत चलौ अबहीं फिरि आवैं गोरस बेँचि सबारैं।
माखन दधि घृत साजतिँ मटुकी मथुरा जान बिचारैं।

---

२१५. करज = अँगुली। मखनि = यज्ञों से।
२१६. प्रकृति के = नैसर्गिक; हार्दिक। मंत्र = तजवीज। एक भांति = एक-सी। सब ... जनाइ = सब मन ही मन समझ गये; सबके मनों में भासित हो गया।

षटदस सहज सिंगार करति हैं अँग अँग निरखि सँवारतिँ।
सूरदास प्रभु प्रीति सबनि कैं नैंकु न हृदयँ बिसारतिँ ॥२१७॥

जुवती अंग सिँगार सँवारति।
बेनी गूंथि मांग मोतिन की सीसफूल सिर धारति।
गोरे भाल बिंदु सेंदुर पर टीका धरचौ जराउ।
बदन चन्द्र पर रवि तारागन मानौ उदित सुभाउ।
सुभग स्रवन तरिवन मनि भूषित यह उपमा नहिँ पार।
मनहुँ काम रचि फंद बनाए कारन नंदकुमार।
नासा नथ मुक्ता की सोभा रह्यौ अधर तट जाइ।
दाड़िम कन सुक लेत बन्यौ नहिँ कनक फंद रह्यौ आइ।
दमकत दसन अरुन अधरनि तर चिबुक डिठौना भ्राजत।
दुलरी अरु तिलरी बँद तापर सुभग हमेल बिराजत।
कुच कंचुकी हार मोतिन अरु भुजनि बिजैठे सोहत।
डारनि चुरी करनि फुँदना जनु कंज पास अलि जोहत।
छुद्र घंटिका कटि लहँगा रँग तन तन सुख की सारी।
सूर ग्वालि दधि बेचन निकरी पग नूपुर धुनि भारी ॥ २१८ ॥

ग्वारिनि तब देखे नँदनंदन।
मोर मुकुट पीतांबर काछें खौर किए तन चंदन।
तब यह कह्यौ कहां अब जैहौ आगें कुंवर कन्हाई।
यह सुनि मन आनंद बढ़ायौ मुख कहैं बात डराई।
कउ काउ कहति चलौ री जाई कोउ कहै फिरि जाइ।
कोउ कोउ कहति कहा करिहैं हरि इनकौं कहा पराइ।

---

२१८. सीसफूल = शिरोभूषणविशेष। कारन नंदकुमार = कृष्ण के लिए। डारनि = भुजा का निचला भाग। फुँदना = काली डोरी या तारों की बनी हुई गाँठ, जो शोभा के लिए बनाई जाती है।
२१९. पराइ = भागें (इनसे क्या भागें)।

कोऊ कहति कालि ही हमकौं लूटि लईं नँदलाल।
सूर स्याम कैं ऐसे गुन हैं घरहिं फिरौ ब्रजबाल।। २१९।।

ग्वालनि सैन दियौ तब स्याम।
कूदि कूदि सब परहु द्रुमनि तैं जात चलीं घर बाम।
सैन जानि तब ग्वाल जहाँ तहँ द्रुम द्रुम डार हलाए।
बेन बिषान संख मुरली धुनि सब एक सब्द बजाए।
चकित भइ तरु तरु प्रति देखतिँ डारनि डारनि ग्वाल।
कूदि कूदि सब परे धरनि मैं घेरि लईं ब्रजबाल।
नित प्रति जातिँ दूध दधि बेचन आज पकरि हम पाई।
सूर स्याम कौं दान देहु तब जैहौ नंद दुहाई।। २२०।।

यह सुनि हँसीं सकल ब्रज नारी।
आनि सुनहु री बात नई एक सिखए हैं महतारी।
दधि माखन खैबे कौं चाहत मांगि लेहु हम पास।
सूधें बात कहौ सुख पावैं बांधन कहत अकास।
अब समुझीं हम बात तुम्हारी पढ़े एक चटसार।
सुनहु सूर यह बात कहौ जनि जानतिँ नंदकुमार।।२२१।।

बात कहति ग्वालिनि इतराति।
हम जानी अब बात तुम्हारी सूधें नहिँ बतराति।
इहै बड़ौ दुख गांव बास कौ चीन्हे कोउ न सकात।
हरि मांगत हैं दान आपनौ कहतिँ मांगि किन खात।

---

२२०. सैन = इशारा।
२२१. सिखए = सिखाये गये हैं। बाँधन कहत अकास = हैसियत के बाहर का काम करना चाहते हो। चटसार = पाठशाला।
२२२. चीन्हे .. सकात = जान-पहचान हो जाने पर कोई डरता नहीं, अदब नहीं करता।

हाट बाट सब हमहि उगाहत अपनौ दान जगात।
सूरदास कौ लेखौ दीजै कोउ न कहै पुनि बात ॥२२२॥

कौन कान्ह, को तुम, कहा मांगत ?
नीकैं करि सबकौं हम जानतिं बातैं कहत अनागत।
छांड़ि देहु हमकौं जनि रोकहु बृथा बढ़ावत रारि।
जैहै बात दूरि लौं ऐसी परिहै बहुरि खँभारि।
आजुहि दान पहिरि ह्यां आए कहां दिखावहु छाप।
सूर स्याम वैसैंहि चलौ ज्यौं चलत तुम्हारौ बाप ॥२२३॥

कान्ह कहत दधि-दान न दैहौ।
लैहौं छीनि दूध दधि माखन देखत ही तुम रैहौ।
सब दिन कौ भरि लेहुँ आज हीं तब छाड़ौं मैं तुमकौं।
उघटति हौ तुम मात पिता लौं नहिं जानौ तुम हमकौं।
हम जानति हैं तुमकौं मोहन लै लै गोद खिलाए।
सूर स्याम अब भए जगाती वै दिन सब बिसराए ॥२२४॥

का पर दान पहिरि तुम आए।
चलहु जु मिलि उनहीं पै जैयै जिन तुम रोकन पंथ पठाए।
सखा संग लीन्हे जु सैंति कै फिरत रैनि दिन बन मैं धाए।
नाहिंन राज कंस कौ जान्यौ बाट जु रोकत फिरत पराए।
लीन्हे छीन बसन सबही के सबही लै कुंजनि अरुझाये।
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे दधि के माट भूमि ढरकाए ॥ २२५ ॥

---

२२२. दान जगात = कर या चुंगी।

२२३. अनागत = जो फबती न हो; असम्भव। खँभारि = झंझट। दान पहिरि = चुंगी उगाहने का अधिकार लेकर, पट्टा बाँधकर। छाप = सरकारी मुहर या परवाना।

२२४. उघटति = उखाड़ती हो; लपेटती हो।

२२५. दान पहिरि = वह पट्टा जो सरकारी कर्मचारी पहनते हैं।

प्यारी पीतांबर उर झटक्यौ।
हरि तोरी मोतिन की माला कछु गर कछु कर लटक्यौ।
ढीठौ करन स्याम तुम लागे जाइ गही कटि फेंट।
आपु स्याम रिस करि अंकम भरि भई प्रेम की भेंट।
जुवतिनि घेरि लियौ हरि कौं तब भरि भरि धरि अँकवारि।
सखा परसपर देखत ठाढ़े हँसत देत किलकारि।
हांक दियौ करि नंद दोहाई आइ गए सब ग्वाल।
सूर स्याम कौं जानति नाहीं ढीठ भई हैं बाल ॥२२६॥

हम भईं ढीठ, भले तुम ग्वाल।
दीन्हौ ज्वाब दई कौ चैहौ देखौ री यह कहा जँजाल।
बन भीतर जुवतिन कौं रोकत हम खोटी तुम्हरे ये हाल।
बात कहन कौं यौ आवति है बड़े सुधर्मा धर्महिपाल।
साखि सखा की ऐसी भरिहौ तब आवहु ते जीति भुवाल।
आए हैं चढ़ि रिस करि हम पर सूर हमहिं जानत बेहाल॥२२७॥

जानी बात तुम्हारी सबकी।
लरिकाई के ख्याल तजौ अब गई बात वह तब की।
मारग रोकत रहे जमुन कौ तेहि धोखैं हौ आए।
पावहुगे पुनि कियौ आपनौ जुवतिनि हाथ लगाए।
जौ सुनि हैं वह बात मात पितु तौ हमसौं कहा कैहैं।
सूर स्याम मोतिनि लर तोरी कौन ज्वाब हम दैहैं ॥ २२८ ॥

---

२२६. प्यारी . . झटक्यौ = राधा ने कृष्ण की देह का पीताम्बर झटका।
ढीठौ = ढिठाई।

२२७. दई कौ चैहौ = बुरे दिन (दुर्दैव) देखोगे। साखि....भरिहौ = साथ देना। भुवाल = राजा, कंस। बेहाल = अबला; निःसहाय; बेपुरसाँ।

आपुन भईं सबै अब भोरी।
तुम हरि कौ पीतांबर झटक्यौ उन तुम्हरी मोतिनि लर तोरी।
मांगत दान ज्वाब नहिँ देतीं ऐसी तुम जोवन की जोरी।
डर नहिँ मानतिँ नँदनंदन कौ करतिँ आनि झकझोरा झोरी।
एक तुम नारि गवांरि भली हौ त्रिभुवन मैं इनकी सरि को री।
सूर सुनहु लैहैं छड़ाई सब अबहिँ फिरौगी दौरी दौरी॥ २२९॥

तुम देखत रैहौ हम जैहैं।
गोरस बेँचि मधुपुरी तैं पुनि एहीं मारग ऐहैं।
ऐसैं ही बैठे सब रैहौ बोले ज्वाब न दैहैं।
घरि लैहैं जसुमति पै हरि कौं तब धौं कैसें कैहैं।
काहे कौं मोतिनि लर तोरी हम पीतांबर लैहैं।
सूर स्याम इतरात इते पर घर बैठे तब रैहैं॥ २३०॥

मेरैं हठ क्यौं निबहन पैहौ।
अब तौ रोकि सबनि कौ राख्यौ कैसें करि तुम जैहौ।
दाव लेउँगौ भरि दिन दिन कौ लेखौ करि सब दैहौ।
सौंह करत हौं नंदबबा की हौं कैहौं तब जैहौ।
आवति जाति रहत एहीं पथ मो सौ बैर बढ़ैहो।
सुनहु सूर हम तैं हठ मांडति कौन नफा करि लैहौ॥ २३१॥

कौन बात यह कहत कन्हाई।
समुझतिँ नहीं कहा तुम मांगत डरपावत करि नंद दुहाई।
डरपावहु तिनकौं जे डरपहिँ हम तुम तैं घटि नाहिँ।
मारग छांडि देहु मनमोहन दधि बेचन हम जाहिँ।

---

२२९. भोरी = निर्दोष, भोली। लर = लड़ी।
२३१. निबहन = निकलकर जाना। हठ माडति = हठ ठानती हो; बैर बाँधती हो।

भली करी मोतिनि लर तोरी जसुमति सौं हम लैहैं।
सूरदास प्रभु इहौ बनत नहिँ इतनौ धन कहँ पैहैं ॥ २३२ ॥

दान देति की झगरौ करिहौ ।
प्रथमहिँ यह जंजाल मिटावहु ता पाछैं तुम हमहिँ निदरिहौ।
कहत कहा निदरे से हौ तुम सहज कहतिँ हम बात।
आदि बुन्यादि सबै हम जानतिँ काहे कौं सतरात?
रिस करि करि मटुकी सिर धरि धरि डगरि चलीं सब ग्वारिनि।
सूर स्याम अंचल गहि झटकीं जैहौ कहां बजारिनि ॥२३३॥

मांगत ऐसे दान कन्हाई।
अब समुझी हम बात तुम्हारी प्रगट भई कछु धौं तरुनाई।
इहिँ लालच अँकवारि भरत हौ हार तोरि चोली झटकाई।
अपनी ओर देखि धौं लीजै ता पाछैं करिए बरिआई।
सखा लिए तुम घेरत पुनि पुनि बन भीतर सब नारि पराई।
सूर स्याम ऐसी न बूझियै इन बातनि मरजादा जाई ॥ २३४ ॥

हम पर रिस करतिँ ब्रजनारि।
बात सूधें हम बतावत आपु उठतिँ पुकारि।
कबहुँ मरजादा घटावतिँ कबहुँ दैहैं गारि।
प्रात तैं झगरौ पसारौ दान देहु निवारि।

---

२३२. इहौ बनत . . .पैह = यह कहना भी नहीं बनता क्योंकि यशोदा के पास इतना धन भी कहाँ है (जो मेरी मुक्तामाल का मूल्य चुका सके)।

२३३. जंजाल मिटावहु = पावना साफ़ करो। निदरिहौ = अपमान करोगी। कहत . . . हौ तुम = तुम कहते क्या हो, अपमानित तो तुम हो ही। बुन्यादि = बुनियाद, उत्पत्ति। सतरात = अकड़ते हो। बजारिनि = बाज़ार करनेवाली (तुच्छता में)।

२३४. अपनी ओर = अपनी हस्ती की ओर। बरिआईं = ज़बरदस्ती।

बड़े घर की बहू बेटी करतिँ वृथा झँवारि।
सूर अपनौ अंस पावैं जाहिँ घर झखमारि ॥२३५॥

दान सुनत रिस होइ कन्हाई।
और कहौ सो सब सहि लैहैं जो कछु भली बुराई।
महतारी तुम्हरी के वै गुन उरहन देत रिसाई।
तुम नीके ढँग सीखे बन मैं रोकत नारि पराई।
आवन जान पाव नहिं कोऊ तुम मग मैं घटवाई।
सूर स्याम हमकौं बिरमावत खीझत वहिनी माई ॥ २३६ ॥

काहे कौं तुम झेर लगावति।
दान देहु घर जाहु बेंचि दधि तुमही कौं यह भावति।
प्रीति करौ मोसौं तुम काहुँ न बनिज करति ब्रज गाउँ।
आवहु जाहु सबै इहिँ मारग लेत हमारौ नाउँ।
लेखौ करौ तुमहि अपनैं मन जो दैहौ सो लैहौं।
सूर सुभाइ चलौगी जब तुम पुनि धौं मैं कह कैहौं ॥ २३७ ॥

काहे कौं हम सौं हरि लागत।
बातहिँ कछू खोल रस नाहीं को जानै कहा मांगत !
कहा सुभाउ परथौ अब ही तैं इन बातनि कछु पावत।
निपट हमारैं ख्याल परे हरि बन मैं नितहिँ खिझावत।
पैंड़ौ देहु बहुत अब कीन्हौ सुनत हँसैंगे लोग।
सूर हमहिँ मारग जनि रोकहु घर तैं लीजै ओग ॥ २३८ ॥

---

२३५. झँवारि = झाँव-झाँव । अंस = हक़ । झखमारि = इच्छा या अनिच्छापूर्वक जैसे भी हो ।

२३६. दान = कर या उगहनी के नाम से । घटवाई = घाट का कर लेनेवाले । बिरमावत = अबेर कराते हो ।

२३७. झेर लगावति = विलंब करती हो । बनिज = व्यापार ।

२३८. खोल रस = गुप्त रस । ओग = उगाहना, उधार चुकाना ।

अब लौं यहै करचौ तुम लेखौ।
मो कौं ऐसी बुद्धि बतावतिँ कर दरपन लै देखौ।
आपहि चतुर आपु ही सब कछु हमकौं करतिँ गँवार।
ओगहै लेत फिरौ इनकैं घर ठाढ़े ह्वै ह्वै द्वार।
घाट छांड़ि जैहौं तब लैहौं ज्वाब नृपति कहु देहौं।
जा दिन तैं इहिँ मारग आवति ता दिन तैं भरि लैहौं।
इनकी बुद्धि दान हम पहिरौ काहैं न घर घर जैहौं।
सूर स्याम तब कहत सखिनि सौं जान कौन बिधि दैहौ ।।२३९।।

भली भई नृप मान्यौ तुम हूं।
लेखौ करैं जाइ कंसहि पै चलैं संग तुम हम हूं।
अब लौं हम जानी ही घर हीं पहिरचौ है तुम दान।
कालि कह्यौ हो दान लेन कौं नंदमहर की आन।
तौ तुम कंस पठाए हौ ह्यां अब जानी यह बात!
सूर स्याम सुनि सुनि यह बानी भौंह मोरि मुसकात ।।२४०।।

कहा कहतिँ कछु जानि न पायौ।
कब कंसहिँ धौं हम कर जोरचौ कब हम माथ नवायौ।
कबहूं सौंह करत देख्यौ मोहिँ लेत कबहुँ मुख नाउँ।
निपटहिँ ग्वारि गवांरि भई तुम बसत हमारैं गाउँ।
कहा कंस कितने लायक कौ जाकौं मोहिँ दिखावति।
सुनहु सूर इहि नृप के हम हैं यह तुम्हरैं मन आवति? ।।२४१।।

---

२३९. कर दरपन = हाथ में दर्पण लेकर मुँह देखो (विनोद में)। ओग-है = उधार के दाम।

२४०. जानी ही = समझती थी। आन = शपथ।

२४१. कबहूं सौंह . . मोहिँ = मुझे कंस के नाम की शपथ करते या दुहाई देते देखा है। इहि . . हम ह = हम कंस के दल के हैं।

यह कहि उठे नंदकुमार।
कहा ठगि सी रहीं बाला परचौ कौन बिचार।
दान कौ कछु कियौ लेखौ रहीं जहँ-तहँ सोचि।
प्रगट करि हमकौं सुनावहु मेटि जिय दै दौचि।
बहुरि इहिं मग जाहु आवहु राति सांझ सकार।
सूर ऐसौ कौन जो पुनि तुमहिं रोकनिहार ॥२४२॥

हमहिं और सो रोकै कौन ?
रोकनिहारौ नंद महर सुत कान्ह नाम जाकौ है तौन।
जाकैं बल है काम नृपति कौ ठगत फिरत जुवतिनि कौं जौन।
टोना डारि देत सिर ऊपर आपु रहत ठाढ़े ह्वै मौन।
सुनहु स्याम ऐसी न बूझिए बानि परी तुमकौं यह कौन।
सूरदास प्रभु कृपा करहु अब कैसेंहु जाहिं आपनें भौन ॥२४३॥

को जानै हरि चरित तुम्हारे।
जबहूं दान नहीं तुम पायौ मन हरि लिए हमारे।
लेखौ करि लीजै मनमोहन दूध दह्यौ कछु खाहु।
सदमाखन तुम्हरेहि मुख लायक लीजै दान उगाहु।
तुम खैहौ माखन दधि हम सब देखि देखि सुख पावैं।
सूर स्याम तुम अब दधि दानी कहि कहि प्रगट सुनावैं ॥२४४॥

माखन दधि हरि खात ग्वाल सँग।
पातनि के दोना सबकैं कर लेत पतोखनि मुख में तात रँग।
मटुकिनि तैं लै लै परुसति हैं हरष भरी ब्रजनारि।
यह सुख तिहूं भुवन कहुँ नाहीं दधि जेँवत बनवारि।

---

२४२. लेखौ = हिसाब। दौचि = द्विविधा। सांझ सकार = किसी भी समय।

२४५. दधि दानी = दधि का दान (कर) लेनेवाले। पतोखनि = पत्तों के दोनों में।

गोपी धन्य कहतिं आपुन कौं धन्य दूध धनि माखन।
जाकौ कान्ह लेत मुख मेलत करत सबै संभाषन।
जो हम साध करतिँ अपनैं मन सो सुख पायौ नीकैं।
सूर स्याम पर तन मन वारतिँ आनँद जी सब ही कैं।। २४५ ।।

राधा सौं माखन हरि मांगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ तुम्हरौ कैसौ लागत।
लै आई बृषभानु सुता हँसि सद लौनी है मेरौ।
लै दीन्हौ अपनैं कर हरि मुख खात अल्प हँसि हेरौ।
सबहिनि तैं मीठौ दधि है यह मधुरे कह्यौ कन्हाइ।
सूरदास प्रभु सुख उपजायौ ब्रजललना मन भाइ ।।२४६।।

मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिनि को सो है लयौ छडाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आंच में अवटि सिरायौ।
नई दोहनी पोंछि पखारी धरि निरधूम खिरनि पै तायौ।
ता में मिलि मिस्रित मिस्री करि दै कपूर पुट जावन नायौ।
सुभग ढकनियां ढांपि बांधि पट जतन राखि छीकैं समदायौ।
हौं तुम कारन लै आई गृह मारग में न कहूं दरसायौ।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि कियौ कान्ह ग्वालिनि मनभायौ।।२४७।।

नंदकुमार कहा यह कीन्हौ।
बूझतिँ तुमहिँ कहौ धौं हमसौं दान लियौ की मन हरि लीन्हौ।

---

२४६. सद लौनी = ताजा मक्खन। मधुरें = धीरे से।
२४७. गुजरिनि = अहीरिनि (निंदा या तुच्छता के अर्थ में)। मधुर आंच = हलकी आँच। निरधूम = धुएँ से रहित। खिरनि = अँगीठी। समदायौ = रक्खा। मारग . . .दरसायौ = रास्ते में किसी की नजर नहीं पड़ने दी।

कछू दुराव नहीं हम राख्यौ निकट तुम्हारैं आई।
एते पर तुम हीं अब जानौ करनी भली बुराई।
जो जासौं अंतर नहिँ राखै सो क्यौं अंतर राखै।
सूर स्याम तुम अंतरजामी बेद उपनिषद भाषै॥ २४८॥

स्याम सुनहु एक बात हमारी।
ढीठौ बहुत कियौ हम तुम सौं बकसौ चूक हमारी।
मुख सौं कही कटुक सब बानी हृदय हमारैं नाहिँ।
हँसि हँसि कहति खिझावतिँ तुम कौं अति आनँद मन माहिँ।
दधि माखन कौ दान और जो जानौ सबै तुम्हारौ।
सूर स्याम तुमकौं सब दीन्हौ जीवन प्रान हमारौ॥ २४९॥

राधा जी का अनुराग

लोक सकुच कुल कानि तजी।
जैसैं नदी सिंधु कौं धावै तैसैं स्याम भजी।
मात पिता बहु त्रास दिखायौ नैंकु न डरी लजी।
हारि मानि बैठे नहिँ लागति बहुतै बुद्धि सजी।
मानति नहीं लोक मरजादा हरि कैं रंग मजी।
सूर स्याम कौं मिली चून हरदी ज्यौं रंग रजी॥२५०॥

नैंकु नहीं घर मैं मन लागत।
पिता मातु गुरुजन परबोधत नीके बचन बान सम लागत।
तिनकौं धिग धिग कहतिँ मनहिँ मन इनकौं बनै भलैं ही त्यागत।
स्याम बिमुख नर नारि बृथा सब कैसैं मन इन सौं अनुरागत।

---

२४९. बकसौ = क्षमा करो।
२५०. नहिँ....सजी = बहुत-सी तदबीरें उन्होंने कीं, पर लगी (एक भी) नहीं। मजी = निखर गई हैं। रजी = रँगी हुई हो।
२५१. परबोधत = चेतावनी (शिक्षा) देते है।

इनकौ बदन प्रात दरसै जनि बार बार बिधि सौं यह मांगत।
यह तन सूर स्याम कौं अरप्यौ नैंकु टरै नहिं सोवत जागत ॥२५१॥

कोउ माइ लैहै री गोपालहिं।
दधि कौ नाम स्याम सुंदर रस बिसरि गयौ ब्रजबालहिं।
मटुकी सीस फिरति ब्रज बीथिनि बोलत बचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूं दिसि चितवति चित लाग्यौ नँदलालहिं।
हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहिं।
सूर स्याम बिन और न भावै या बिरहिनि बेहालहिं ॥२५२॥

कछु कैहै की मौनहिं रैहै।
कहा कहति हौं तो सौं कब की ताकौ ज्वाब कछू मोहि दैहै।
सुनिहैं मात पिता लोगनि मुख यह लीला उन सबनि जनैहै।
प्रातहि तैं आई दधि बेचन घरहिं आजु जैहै कि न जैहै।
मेरौ कह्यौ मानिहै नाहीं ऐसैंहि भ्रमि भ्रमि द्यौस बितैहै।
मुख तौ खोलि सुनौं तेरी बानी भली बुरी कैसी घर कैहै।
गुप्त प्रीति काहैं न करी हरि सौं प्रगट किए कछु नफा बढ़ैहै।
सूर स्याम सौं प्रीति निरंतर लाज किएँ अंतर कछु ह्वै है ? २५३॥

कहा करौं मन हाथ नहीं।
तू मो सौं यह कहति भली री अपनौ चित मोहि देति नहीं !
नैन रूप अटके नहिं आवत स्रवन रहे सुनि बात तहीं।
इंद्री धाइ मिलीं सब उनकौं तनु मैं जीव रह्यौ सँग हीं।
मेरैं हाथ नहीं ये कोऊ घट लीन्हे इक रही मही।
सूर स्याम सँग तैं कहुँ टरत न आनि देहि जौ मोहिं तुही ॥२५४॥

---

२५२. तक्र = मट्ठा।
२५३. कछु नफा बढ़ैहै = क्या कुछ लाभ उठावेगी ? लाज .... ह्वै है = यदि लज्जा करेगी तो प्रीति में क्या कुछ अंतर पड़ जायगा ?
२५४. चित = हृदय।

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सौं प्रीति निरंतर क्यौं अब रहै छपानी।
कहा करौं सुंदर मूरति इन नैननि मांझ समानी।
निकसति नहीं बहुत पचि हारी रोम रोम अरुझानी।
अब कैसें निरुवारि जाति है मिली दूध ज्यौं पानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी उर अंतर की मानी ॥२५५॥

मैं अपनौ मन हरि सौं जोरचौ। हरि सौं जोरि सबनि सौं तोरचौ।
नाच कछ्यौ अब घूंघट छोरचौ। लोक लाज सब फटकि पछोरचौ।
आगैं पाछैं नीकैं हेरचौ। माझ बाट मटुकी सिर फोरचौ।
कहि कहि कासौं करति निहोरचौ। कहा भयौ कोऊ मुख मोरचौ।
सूरदास प्रभु सौं चित जोरचौ। लोक बेद तिनुका सौं तोरचौ ॥२५६॥

कबकी महचौ लिएँ सिर डौले।
भूटें ही इत उत फिरि आवै इहां आनि फिरि बोलै।
मुंह सौं भरी मथनियां तेरी तोहिं रटत भई साझ।
जानति हौ गोरस कौ लैबौ याही बाखरि माझ।
इत धौं आइ बात सुनै मेरी कहे बिलग जनि मानै।
तेरे घर मैं तुही सयानी और बेंचि नहिं जानै।
भ्रमतहि भ्रमतहि भ्रम गइ ग्वालिन बिकल भई बेहाल।
सूरदास प्रभु अंतरजामी आइ मिले गोपाल ॥२५७॥

---

२५५. अरुझानी = उलझ गई है। निरुवारि = निकालना।

२५६. नाचकछ्यौ = खुलकर नाचने का काछ कछा (बाना बनाया) है; घूंघट छोरचौ = घूँघट उघार दिया है (लज्जा छोड़ दी है)। फटकि पछोरचौ = फटक कर साफ़ कर दिया है। मुख मोरचौ = किसी के मुँह मोड़ने से (प्रतिकूल होने से) क्या हुआ? तिनुका = तृण।

२५७. मुंह सौं भरी = लबालब भरी हुई। जानति...माझ = जानती हो कि तुम्हारे गोरस की खरीद इसी घर में होगी (जिसमें कृष्ण रहते हैं)। बिलग = बुरा।

तुम सौं कहा कहौ सुन्दर घन ।
या ब्रज में उपहास चलत है सुनि सुनि स्रवन रहति मन ही मन ।
जा दिन सबनि बछरु नोई कर मो दुहि दई धेनु बंसीवन ।
तुम गही बांह सुभाइ आपनें हौं चितई हँसि नैंकु बदन तन ।
ता दिन तैं घर मारग जित तित करत चबाउ सबै गोपीजन ।
सूर स्याम सौं सांच पारि हौं यह पतिबरत सुनहु नँदनंदन ।।२५८।।

ब्रज बसि काके बोल सहौं ।
तुम बिन स्याम और नहिं जानौं सकुचनि तुमहि कहौं ।
कुल की कानि कहां लौं करिहौं तुम कौं कहा लहौं ।
धिग माता धिग पिता बिमुख तव भावै तहाँ बहौं ।
कोऊ करै कहै कछु कोऊ हरष न सोक गहौ ।
सूर स्याम तुमकौं बिन देखे तन मन जीव दहौं ।।२५९।।

देह धरे कौ यह फल प्यारी ।
लोक लाज कुल कानि मानिए डरिए बंधु पिता महतारी ।
श्रीमुख कह्यौ जाहु घर सुन्दरि बड़े महर वृषभानु दुलारी ।
तुम अवसेर करत सब ह्वैहैं जाहु बेगि दैहै पुनि गारी ।
हमहु जाहिँ ब्रज तुमहु जाहु अब गेह नेह क्यौं दीजै डारी ।
सूरदास प्रभु कहत प्रिया सौं नैंकु नहीं मोतै तुम न्यारी ।।२६०।।

स्याम कौन कारे की गोरे !
कहां रहत काके वे ढोटा वृद्ध तरुन की वै हैं भोरे ।

---

२५८. सांच पारिहौं = सत्य-सत्य पालन करूँगी ।
२५९. बोल = व्यंग्य बातें ।
२६०. देह धरे कौ = शरीर धारण करने का; व्यावहारिक । तुम अवसेर = तुम्हारी चिन्ता ।
२६१. भोरे = बच्चे ।

इहँई रहत कि और गावँ कहुँ मैं देखे नाहिँन कहुँ उनकौं।
कहौ नहीं समुझाइ बात यह मोहिँ लगावति हौ तुम जिनकौं।
कहां रहौं मैं कहँ के वै धौं तुम मिलवति हौ काहें ऐसी।
सुनहु सूर मो सी भोरी कौं जोरि जोरि लावति हौ कैसी ।।२६१।।

चतुर सखी मन जानि लई ।
मो मैंती दुराव यह कीन्हौ याकै जिय कछु त्रास भई।
तब यह कह्यौ हँसति री तोसौं जनि मन मैं कछु आनै ।
मानी बात कहां वै कहँ तू हमहूं उनहिँ न जानैं।
अबहिं तनक तू भई सयानी हम आगे की बारी।
सूर स्याम ब्रज मैं नहिं देखे हँसति कह्यौ घर जा री।।२६२।।

अब राधा तू भई सयानी।
मेरी सीख मानि हिरदै धरि जहँ तहँ डोलति बुद्धि अयानी।
भई लाज की सीमा तन मैं सुनि यह बात कुँवरि मुसकानी।
हँसति कहा मैं कहति भली तोहिँ सुनति नहीं लोगनि की बानी।
आजहि तैं कहुँ जान न दैहौं मा तेरी कछु अकथ कहानी।
सूर स्याम कैं संग न जैहौं जा कारन तू मोहिँ सुगानी।।२६३।।

जुवती जुरि राधा ढिग आइ।
लखि लीन्ही तब चतुर नागरी ये मो पर सब हैं रिसहाईं।
आदर नही कियौ काहू कौं मन मैं एक बुद्धि उपजाई।
मौन गह्यौ नहिँ बोलति तिनसौं बैठि रही करि कै चतुराई।
आपुहि बैठि गईं ढिग सिगरी जब जानी यह तौ चतुराई।
सूरदास वै सखी सयानी और कहूं की बात चलाई ।।२६४।।

२६१. मोहिं लगावति = जिनसे मेरा संबंध बताती हो । मिलवति = बातें मिलाना या रचना ।
२६३. लाज की सीमा = यौवन के चिह्न। सुगानी = क्रोध कर रही है ।
२६४. रिसहाई = चिढी हुई ।

राधिका मौन ब्रत किन सधायौ ।
धन्य ऐसौ गुरू कान कैं लगत हीं मंत्र दै आजु ही वह लखायौ।
कालिह कछु और तू प्रातहिँ कछु और ही अबहिँ कछु और ह्वै गई प्यारी।
सुनत यह बात हम दौरि आईं सबै तोहि देखत भई चकित भारी।
अब कहौ बात या मौन कौ फल कहा सुनि जु लीजै कछु हमहु जानें।
एक ही सँग भई सबै जोबन नई अब होहु गुरु हम जु तुमहिं मानें।
देहि उपदेस हमहूं धरें मौन सब मंत्र जब लियौ तब हम न बोली।
सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी चरचि लीन्ही मोहिँ करति ढोली ॥२६५।

कैसे हैं नँद सुवन कन्हाई।
देखे नहीं नयन भरि कबहूं ब्रज मैं रहत सदाई।
सकुचति हौं इक बात कहत तोहिँ सो नहिँ जाति सुनाई ।
कैसेंहु मोहिँ दिखावहु उनकौं यह मेरे मन आई।
अति ही सुंदर कहियत हैं वे मोकौं देहि बताई।
सूरदास राधा की बानी सुनत सखी भरमाईं ॥२६६॥

गोपी यहै करतिँ चवाउ ।
देखौ धौं चतुरई वाकी हमसौं कियौ दुराउ।
लरिकई तैं करति ये ढँग तबहिँ रही सतभाउ।
अब करति चतुराइ जानी स्याम पढ़ये दांउ।
कहाँ लौ करिहै अचगरी सबै ये उपजाउ।
आजु बांची मौन धरि जो सदा होत बचाउ।

---

२६५. कान कैं लगत = मंत्र कान में सुनते ही । सुनि जु लीजै = यदि हम सुन लें । बोली = बुलाया । चरचि लीन्ही = ताड़ गई। ढोली = (व्यंग्यात्मक) ठठोली।
२६६. भरमाईं = भ्रम में पड़ गईं (कि अब क्या उत्तर दें ?)
२६७. सतभाउ = सीधी सादी। दांउ = चाल । उपजाउ = झूठी गढ़ी हुई बात ।

दिवस चारिक भोर पारौ रहौ एक सुभाउ।
सूर कालिहिँ प्रगट ह्वैहै करन दै अपडाउ॥२६७॥

कहा कहति तू बात अयानी।
तुम यह कहति सबै वह जानति हम सब तैं वह बड़ी सयानी।
सात बरष तैं ये ढंग सीखे तुम तौ यह आजुहि है जानी।
वाके छंद भेद को जानै मीन कबहिँ धौं पीवत पानी।
हरि के चरित सबै उहिँ सीखे दोऊ हैं वे बारह बानी।
काल्हि गईं वाकैं घर सब मिलि कैसी बुद्धि मौन की ठानी।
केती कही नैंकु नहिँ बोली फिरी आइ तब हमहिँ खिसानी।
सूर स्याम संगति की महिमा काहू कौं नैंकहुँ न पत्यानी॥२६८॥

यमुना-स्नान

पुनि कहियौ अब न्हान चलौगी।
तब अपनौ मन भायौ कीजौ जब मोकौं हरि संग मिलौगी।
वहै बात मन मैं गहि राखी मैं जानति कबहुँ न बिसरौगी।
बड़ी बार मोकौं भइ आए न्हान चलति की बहुरि लरौगी।
गहि गहि बांह सबनि करी ठाढ़ी कैसैंहूं घर तैं निसरौगी।
सूर राधिका कहति सखिनि सौं बहुरि आइ घर काज करौगी॥२६९॥

राधिका संग मिलि गोपनारी।
चलीं हिलि मिलि सबै रहसि बिहँसत तरुनि परसपर कौतुहल करत भारी।

---

२६७. भोर पारौ = चुपचाप रहकर भुला दो। एक सुभाउ = सरल भाव से (ताकि हमारी चाल प्रकट न हो)। अपडाउ = दुर्भाव; परायापन।
२६८. छंद = चालबाजी। भेद = रहस्य। मीन. . . पानी = मछली कब पानी पीती है? यह कौन जान सकता है। बारह बानी = पक्के, पूरे (होशियार), कच्चापन नहीं है।
२७०. रहसि बिहँसत = हास-बिलास करती हुई।

मध्य ब्रजनागरी रूप रस आगरी घोष उजियागरी स्याम प्यारी।
जुरीं ब्रज सुंदरी दसन छबि कुंदरी काम तन दुंदरी करन हारी।
अंग अंग सुभग अति चलति गजगति सबै कृष्न सौं एकमति जमुन जाहीं।
कोउ निकसि जाति कोउ ठठकि ठाढ़ी रहति कोउ कहति संग मिलि
चलहु नाहीं।
जुवति आनँद भरी भईं जुरि कै खरी तनहिँ छरहरी उठि बैस थोरी।
सूर प्रभु सुनि स्रवन तहाँ कीन्हौ गवन तरुनि मन रवन सब ब्रज
किसोरी।।२७०।।

गईं ब्रज नारि जमुना तीर।
देखि लहरि-तरंग हरषीं रहत नहिँ मन धीर।
संग राजति कुँवरि राधा भई सोभा भीर।
स्नान कौं वै भईं आतुर सुभग जल गंभीर।
कोउ गईं जल पैठि तरुनी और ठाढ़ी तीर।
तिनहिँ लईं बुलाइ राधा करति सुख तन क्रीर।
एक एकहिँ धरति भुज भरि एक छिरकति नीर।
सूर राधा हँसति ठाढ़ी बढ़ी छबि तन चीर।।२७१।।

राधा जल बिहरति सखियनि सँग।
ग्रीव प्रजंत नीर मैं ठाढ़ी छिरकति जल अपनैं अपनैं रँग।
मुख पर नीर परसपर डारतिँ सोभा अतिहि अनूप बढ़ी तब।
मनौ चंद्रगन सुधा गंडूषनि डारत हैं आनंद भरे सब।

---

२७०. काम तन दुंदरी = कामदेव के शरीर में हलचल मचानेवाली।
संग....नाहीं = साथ-साथ क्यों नहीं चलतीं ! उठि बैस =
उठती हुई उम्र की।

२७१. और = अन्य (स्त्रियाँ)।

२७२. रंग = मौज में। गंडूषनि = १. अंजली या चुल्ला, २. कुल्ला।

आईं निकसि जानु कटि लौं सब अँगुरिनि तैं जल डारतिँ।
मानौ सूर कनकबल्ली जुरि अमृत पवन मिस झारतिँ॥२७२॥

नटवर भेष काछे स्याम।
पद कमल नख इंदु सोभा ध्यान पूरन काम।
जानु जंघ सुघटनि करभा नाहिँ रंभा तूल।
पीत पट काछनी मानहु जलज केसर झूल।
कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटि के भीर।
मनो हंस रसाल पंगति रहे हैं ह्रद तीर।
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिनि हार।
मनौ गंगा बीच जमुना चली मिलि त्रैधार।
बाहु दंड बिसाल तट दोउ अंग चंदन रैनु।
तीर तरु बनमाल की छबि ब्रजजुवति सुख दैनु।
चिबुक पर अधरनि दसन दुति बिम्ब बीज लजाइ।
नासिका सुक नयन खंजन कहत कबि सरमाइ।
स्रवन कुंडल कोटि रबि छबि भृकुटि काम-कुदंड।
सूर प्रभु हैं नीप कैं तर सीस धरे सिखंड॥ २७३॥

राधे निरखि भूली अंग।
नंदनंदन रूप पर गति मति भई तनु पंग।

---

२७२. मानौ . . . झारतिँ = सूरदास कहते है मानो स्वर्ण की लतायें (गोपियाँ) एकत्र होकर बहती हवा में अमृत को झारकर साफ़ कर रही हैं। हवा में अन्न ओसाने की क्रिया प्रचलित है।

२७३. पूरन काम = मन कामना पूरी करनेवाली है। जानु = जंघे के नीचे का भाग, जो पेंडुरी के ऊपर होता है। सुघटनि = दृढ़ बनावट में। करभा = सिंह का बच्चा। रंभा = केला। जलज केसर झूल = कमल के केसर का बना वस्त्र। भीर = निकट (भिड़े हुए)। रसाल = मनोहर, सुन्दर। ह्रद = जलाशय, कुंड। कोदंड = धनुष। नीप = कदंब। सिखंड = मयूरपिच्छ।

इत सकुच अति सखिनि कौ उत होति अपनी हानि।
ग्यान करि अनुमान कीन्हौ अबहि लैहैं जानि।
चतुर सखियनि परखि लीन्ही समुझि भई गँवारि।
सबै मिलि इत न्हान लागीं ताहि दियौ बिसारि।
नागरी मुख स्याम निरखति कबहुँ सखियनि हेरि।
सूर राधा लखति नाहीं इन दई अवडेरि॥ २७४॥

चितवनि रोकैं हू न रही।
स्याम सुंदर सिंधु सनमुख सरित उमँगि बही।
प्रेम सलिल प्रबाह भँवरनि मिलि न थाह लही।
लोभ लहरि कटाच्छ घूंघट पट करार ढही।
थके पल पथि नाव धीरज परत नहिँन गही।
मिली सूर सुभाव स्यामहिं फेरिहू न चही॥ २७५॥

चितै रही राधा हरि कौ मुख।
भृकुटी बिकट बिसाल नयन जुग देखत मनहिं भयौ रतिपति दुख।
उतहि स्याम इकटक प्यारी छबि अंग अंग अवलोकत।
रीझि रहे उत हरि इत राधा अरस परस दोउ नोकत।
सखिनि कह्यौ बृषभानु सुता सौं देखे कुँवर कन्हाई।
सूर स्याम एई हैं ब्रज में जिनकी होति बड़ाई॥ २७६॥

---

२७४. समुझि = जान-बूझकर। अवडेरि = उपेक्षा करना, अन्यमनस्क होना।

२७५. लोभ...ढही = लोभरूपी लहर है। नायिका (प्रियदर्शन के लोभ की लहर के वश होकर) कटाक्ष करती है, घूँघट का पट उघर पड़ता है, वही मानो नदी के करारों का ढहना है। पल पथि = पलरूपी यात्री। फेरिहू न चही = उलटकर देखा भी नहीं (गृह कुटुम्ब आदि को)।

२७६. दोउ नोकत = दोनों ओर से।

कहि राधा हरि कैसे है ?
तेरैं मन भाए की नाहीं की सुन्दर की नैसे हैं।
की पुनि हमहिं दुराव करौगी की कैहौ वे जेसे हैं।
की हम तुम सौं कहति रही ज्यौं सांच कहौ की तैसे हैं।
नटवर भेष काछनी काछे अंगनि रतिपति सै से हैं ॥ २७७ ॥

राधा हरि के गर्व गहीली।
मंद मंद गति मत्त मतँग ज्यौं अंग अंग सुख पुंज भरीली।
पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि कैं रस गीली।
धरनी नख चरननि कुरुवारति सौतिनि भाग सुहाग डहीली।
नैंकु नहीं पिय तैं कहुँ बिछुरति तातैं नाहिँन काम दहीली।
सूर सखी बूझैं यह कैहौं आजु भई यह भेंट पहीली ॥ २७८ ॥

कहा कहति तुम बात अलेखे ।
मोसौं कहति स्याम तुम देखे तुम नीके करि देखे।
कैसौ बरन भेष है कैसौ कैसे अंग त्रिभंग।
मो आगैं वह भेद कहौ धौं कैसौ है तनुरंग।
मैं देखे की नाहीं देखे तुम तौ बार हजार।
सूर स्याम द्वै अँखियनि देखति जाकौ वार न पार ॥ २७९ ॥

हम देखे इहिं भांति कन्हाइ ।
सीस सिखंड अलक बिथुरे मुख स्रवननि कुंडल चारु सुहाइ।

---

२७७. नैसे = कुरूप; नेष्ट । सै से = सौ के समान ।

२७८. भरीली = भरी हुई। कुरुवारति = करोना, खरोंचना। डहीली = डहडही, प्रफुल्लित। दहीली = दाहवाली (काम का दाह इसे नहीं है)।

२७९. अलेखे = बिना समझे-बूझे। सूर....वार न पार = जिनका ओर-छोर नहीं है, उन्हें दो आँखों से कैसे देखती हो (व्यंग्य और साथ ही वाक्-चातुर्य)।

कुटिल भृकुटि लोचन अनियारे सुभग नासिका राजति।
अरुन अधर दसनावलि की दुति दाड़िम कन तन लाजति।
ग्रीव हार मुक्ता बनमाला बाहु दंड गजसुंड।
रोमावली सुभग बग पंगति जाति नाभि ह्रद कुंड।
कटि पट पीत मेखला कंचन सुभग जंघ जुग जान।
चरन कमल नख चंद्र नहीं सम ऐसे सूर सुजान॥ २८०॥

मोहन बदन बिलोकत अँखियनि उपजत है अनुराग।
तरनि ताप तलफत चकोर गति पिवत पियूष पराग।
लोचन नलिन नये राजत रति पूरन मधुकर भाग।
मानहुँ अलि आनंद मिले मकरंद पिवत रितु फाग।
भँवरि भाग भृकुटी पर कुंकुम चंदनबिंदु बिभाग।
चातक सोम सक्रधनु घन में निरखत मन बैराग।
कुंचित केस मयूरचंद्रिका मंडल सुमन सुपाग।
मानहुँ मदन धनुष सर लीन्हे बरषत हैं बन बाग।
अधर बिंब बिहँसानि मनोहर मोहन मुरली राग।
मानहुँ सुधा पयोधि घेरि घन ब्रज पर बरषन लाग।

---

२८०. अनियारे = नोकीले।

२८१. तरनि . . .गति = सूर्य के ताप से तड़पते हुए चकोर की भाँति। मधुकर भाग = भ्रमर के लिए सौभाग्यस्वरूप। रितु फाग = वसंत ऋतु। भँवरि . . . बैराग = भौंहों के बीच भौंरी है (भँवर पड़ी हुई बालों की रेखा जो दोनों भौंहों के बीच में हुआ करती है—(सुन्दरता की सूचक) उस पर कुंकुम और चन्दन के टीके लगे हैं। (पृथक् पृथक् रंगों के)। मानो चातक पक्षी बादलों में चन्द्रमा और इंद्रधनुष को देखकर विरक्त (उदासीन) हो रहा हो (जल की आशा नहीं रही)।

कुंडल मकर कपोलनि झलकत स्रम सीकर के दाग।
मानहुँ मीन मकर मिलि क्रीडत सोभित मदन तड़ाग।
नासा तिलक प्रसून पदवि पर चिबुक चारु चित खांग।
दाडिम दसन मंद गति मुसकनि मोहत सुर नर नाग।
श्री गोपाल रस रूप भरी हैं सूर सनेह सुहाग।
ऐसी सोभा सिंधु बिलोकत इन अँखियन के भाग।।२८१।।

तुम देखे मैं नहीं पत्यानी।
मैं जानति मेरी गति सबहीं यहै सांच अपनैं मन आनी।
जो तुम अंग अंग अवलोक्यौ धन्य धन्य अस्तुति मुख गानी।
मैं तौ एक अंग अवलोकति दोऊ नैन भये भरि पानी।
कुंडल झलक कपोलनि आभा इतनैहि माझ बिकानी।
ए‿कटक रही नैन दो‿उ रूंधे सूर स्याम न पिछानी।। २८२।।

द्वै लोचन तुम्हरे द्वै मेरे।
तुम प्रति अंग बिलोकन कीन्हौ मैं भइ मगन एक अँग हेरे।
अपनौ अपनौ भाग सखी री तुम तनमय मैं कहूं न नेरे।
जो बुनिऐ सोई पुनि लुनिऐ और नहीं त्रिभुवन भटभेरे।
स्याम रूप अवगाहि सिन्धु तैं पार होत चढि डोंगिनि केरे।
सूरदास तैसैं ये लोचन कृपा जहाज बिना को प्रेरै। २८३।।

अचानक आइ गए तहँ स्याम।
कृष्न कथा सब कहतिं परसपर राधा संग मिली ब्रजबाम।
मुरली अधर धरे नटवर बपु कटि कछनी पर वारौं काम।
सुभग मोर चंद्रिका सीस पर आइ गए पूरन सुख धाम।

चितखाँग = चित्त में गड़ जाती है।

२८३. त्रिभुवन भटभेरे = दुनिया का प्रपंच। स्याम...केरे = श्याम के रूप-समुद्र में प्रवेश करके डोंगियों (छोटी-छोटी नावों) के सहारे कौन पार हुआ है? (कोई नहीं)। प्रेरै = पार करे; प्रेरित करे।

तनु तमाल तरु तरुन कन्हाई दूरि करन जुवतिनि तन तान।
सूर स्याम बंसी धुनि पूरत श्रीराधा राधा लै नाम ॥ २८४ ॥

थकित भई राधा ब्रजनारि।
जो मन ध्यान करति अवलोकति ते अंतरजामी बनवारि।
रतन जटित पग सुभग पांवरी नूपुर धुनि कल परम रसाल।
मानहुँ चरनकमल दल लोभी निकटहिँ बैठे बाल मराल।
जुगल जंघ मरकत मनि सोभा विपरित भांति सवाँरे।
कटि काछनी कनक छुद्रावलि पहिरे नंददुलारे।
हृदय बिसाल माल मोतिनि बिच कौस्तुभ मनि अति भ्राजत।
मानहुँ नभ निर्मल तारागन ता मधि चन्द्र बिराजत।
दुहुँ कर मुरलि अधर परसाए मोहन राग बजावत।
चमकत दसन मटकि नासापुट लटकि नयन मुख गावत।
कुंडल झलक कपोलनि मानहुँ मीन सुधा सर क्रीडत।
भृकुटी धनुष नैन खंजन मनौ उडत नहीं मन ब्रीडत।
देखि रूप ब्रजनारि थकित भइँ क्रीट मुकुट सिर सोहत।
ऐसे सूर स्याम सोभानिधि गोपीजन मन मोहत ॥ २८५ ॥

देखि री नवल नंदकिसोर।
लकुट सौं लपटाइ ठाढ़े जुवति जन मन चोर।
चारु लोचन हँसि बिलोकनि देखि कैं चित भोर।
मोहिनी मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर।

---

२८४. तन ताम = शरीर का तमोगुण।
२८५. पांवरी = पदत्राण। विपरित भाँति = नीचे से ऊपर की ओर सुराहीदार होते गये हैं। क्रीट = किरीट; एक आभूषण जो सिर पर धारण करते थे।
२८६. लटकि मुकुट झकोर = झकोर के साथ (बल खाकर) मुकुट का लटकाना (नीचे की ओर झुकाना)।

स्रवन धुनि सुनि नाद मोहत करत हिरदै कौर ।
सूर अंग त्रिभंग सुन्दर छबि निरखि तृन तोर ॥२८६॥

सुन्दर बोलत आवत बैन।
ना जानौं तेहिँ समय सखी री सब तन स्रवन कि नैन।
रोम रोम मैं सब्द सुरति की नख-सिख ज्यौं चख ऐन।
एते मान बनी चंचलता सुनी न समझी सैन ।
तब तकि जकि ह्वै रही चित्र-सी पल न लगति चित चैन ।
सुनहु सूर यह साँच कि संभ्रम सपन किधौं दिन रैन ॥२८७॥

निरखि सखि सुन्दरता की सींव ।
अधर अनूप मुरलिका राजति लटकि रहनि अध ग्रीव।
मंद-मंद सुर पूरत मोहन राग मलार बजावत।
कबहुँक रीझि मुरलि पर गिरिधर आपुहि रस भरि गावत।
हरषतिँ लखि दसनावलि पंगति ब्रज-बनिता मन मोहत।
मरकत मनि पुट बिच मुकताहल बदन धरे मनु सोहत ।
मुख बिकसत सोभा इक आवति मनु राजीव प्रकास ।
सूर अरुन आगमन देखि कै प्रफुलित भए हुलास ॥२८८॥

देखि री हरि के चंचल नैन ।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिँ पटतर इक सैन ।
राजिवदल इंदीवर सतदल कमल कुसेसै जाति ।
निसि मुद्रित प्रातहिँ ये बिगसत वै बिगसत दिन राति ।

---

२८६. करत हिरदै कौर = हृदय में घर (क्रोड़) कर लेती है।
२८७. नख. . . ऐन = नख से शिखा तक मानो आँखें ही आँखें हैं (आँखों का ही घर है)।
२८८. अध ग्रीव = गर्दन झुकाकर। राजीव = कमल।
२८९. कुसेसै = कमल की एक जाति ।

अरुन स्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सुरसति गंगा जमुना मिलि आगम कीन्हौ आइ।
अवलोकनि जलधार तेज अति तहां न मन ठहरात।
सूर स्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरमात ॥२८९॥

देखि सखी अधरनि की लाली।
मनि मरकत तैं सुभग कलेवर ऐसे हैं बनमाली।
मनौ प्रात की घटा सांवली तापर अरुन प्रकास।
ज्यौं दामिनि बिच चमकि रहति है फहरत पीत सुबास।
कीधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि जुग फल बिंब सु पाक्यौ।
नासा कीर आइ मनौ बैठौ लेत बनत नहिँ ताक्यौ।
हँसत दसन इक सोभा उपजति उपमा जदपि लजाइ।
मनौ नीलमनि पुट मुकतागन बंदन भरि बगराइ।
किधौं बज्रकन लाल नगनि खचि तापर बिद्रुम पांति।
किधौं सुभग बंधूक कुसुम पर झलकत जलकन कांति।
किधौं अरुन अंबुज बिच बैठी सुंदरताई आइ।
सूर अरुन अधरनि की सोभा बरनत बरनि न जाइ ॥२९०॥

द्वै लोचन साबित नहिँ तेऊ।
बिनु देखे कल परति नहीं छन एते पर कीन्हे यह टेऊ।
बार बार छबि देख्यौइ चाहत साथी निमिष मिले हैं एऊ।
ते तौ ओट करत छिनहीं छिन देखत ही भरि आवत दोऊ।
कैसें मैं उनकौं पहिचानौं नैन बिना लखिऐ क्यौं भेऊ।
ये तौ निमिष परत भरि आवत निठुर बिधाता दीन्हे जेऊ।

---

२८९. सित = शिति (संस्कृत) अर्थात् कृष्ण वर्ण। यों 'सित' सफ़ेद के अर्थ में आता है।

२९०. सुबास = वस्त्र। बंदन = रोरी। बगराइ = खोल दिये गये हैं।

२९१. भेऊ = भेद। ये...जेऊ = जो कुछ निष्ठुर बिधाता ने दिये भी थे (दो नेत्र) वे पलक मारते ही भर आते हैं (फिर दिखाई नहीं पड़ता)।

कहा भई जो मिली स्याम सों तू जान्यौ जानै सब कोऊ।
सूर स्याम कौ नाम स्रवन सुनि दरसन नीकैं देत न ओऊ ॥२९१॥

स्याम सौं काहे की पहिचानि
निमिष निमिष वह रूप न वह छबि रति कीजै जेहि जानि।
इकटक रहत निरंतर निसिदिन मन मति सौं चित सानि।
एकौ पल सोभा की सींवा सकति न उर महँ आनि।
समुझि न परै प्रगट ही निरखति आनँद की निधि खानि।
सखि यह बिरह सँजोग कि समरस दुख-सुख लाभ कि हानि।
मिटति न घृत तैं होम-अगिनि रुचि सूर सु लोचन बानि।
इत लोभी उत रूप परमनिधि कोउ न रहत मिति मानि ॥२९२॥

कब री मिले स्याम नहिं जानौं।
तेरी सौं करि कहति सखी री अबहूं नहिं पहिचानौं।
खरिक मिले की गोरस बेंचत की अबहीं की कालि।
नैननि अंतर होत न कबहूँ कहति कहा री आलि।
एकौ पल हरि होत न न्यारे नीकैं देखे नाहिँ।
सूरदास प्रभु टरत न टारैं नैननि सदा बसाहिँ ॥२९३॥

स्याम रंग रांची ब्रजनारि। और रंग सब दीन्हीं डारि।
कुसुम रंग गुरुजन पितु माता। हरित रंग भैनी अरु भ्राता।
दिना चारि मैं सब मिटि जैहै। स्याम रंग अजरायल रैहै।

---

२९२. इकटक. . . सानि = मन, बुद्धि और चित्त को साथ मिलाकर मेरे नेत्र एकटक श्याम के साथ बने रहते हैं; उन्हें हृदय में लाने का अवसर ही नहीं देते। बिरह. . . समरस = यह वियोग है, संयोग है अथवा दोनों के बीच की वस्तु है। होम. . . रुचि = होम की अग्नि घृत डालने से तृप्त नहीं होती (और अधिक उभड़ती है)।

२९४ कुसुम = लाल रंग का एक पुष्प। अजरायल = अमिट।

उज्वल रंग गोपिका नारी। स्याम रंग गिरिवर के धारी।
स्यामहि मैं सब रंग बसेरौ। प्रगट बताइ देउँ कहि बेरौ।
अरुन सेत सित सुंदर तारे। पीत रंग पीतांबर धारे।
नाना रंग स्याम गुनकारी। सूर स्याम रँग घोपकुमारी ॥२९४॥

यह सुनि कै हँसि मौन रही री।
ब्रज उपहास कान्ह राधा कौ यह महिमा जानी उन ही री।
जैसी बुद्धि हृदय है इनकें तैसीयै मुख बात कही री।
रवि कौ तेज उलूक न जानै तरनि सदा पूरन नभ ही री।
बिष कौ कीट बिषहिँ रुचि मानै जानै कहा सुधारस हीं री।
सूरदास तिल तेल सवादी स्वाद कहा जानै घन ही री ॥२९५॥

श्री राधा का मुक्ता-माल खोना

सुनि री मैया काल्हि हीं मुतिसिरी गवांई।
सखिनि मिलै जमुना गई धौं उनहि चुराई।
कीधौं जल ही मैं गई यह सुधि नहिँ मेरैं।
तब तैं मैं पछिताति हौं कहति न डर तेरैं।
पलक नहीं निसि कहुँ लगी मोहिँ सपथ रा तेरी।
इहिँ डर तैं मैं आजुहीं अति उठी सबेरी।
महरि सुनत चक्रित भई मुख जवाब न आवै।
सूर राधिका गुन भरी कोउ पार न पावै ॥२९६॥

सुनि राधा अब तोहिँ न पत्यैहौं।
और हार चौकी हमेल अब तेरैं कंठ न नैहौं।

---

२९४. बेरौ = ब्यौरा।

२९५. तरनि... री = सूर्य तो सदैव आकाश में पूर्णतः प्रकाशित रहता है (किंतु उलूक उसे देख नहीं पाता)।

२९६. मुतिसिरी = मोती की माला।

लाख टका की हानि करी तैं सो अब तोसौं लैहौं।
हार बिना ल्याएँ लरिहौं री घर नहिँ पैठन दैहौं।
जब देखौं ग्रीवहि मोतिसरी तब ही तौ सचु पैहौं।
नातरु सूर जनम भरि तेरौ नाम नहीं मुख लैहौं ॥२९७॥

जैहै कहा मुतिसरी मोरी।
अब सुधि भई लई वाही नै हँसत चली बृषभानु किसोरी।
अब ही मैं लीन्हे आवति हौं मेरै संग आव जनि कोरी।
देखौ धौं कह करिहौं वाकौ बड़े लोग सीखत हैं चोरी।
मोकौं आज अबेर लागि है ढूढूंगी ब्रज घर घर खोरी।
सूर चली निधरक ह्वै सब सौं चतुर राधिका बातनि भोरी ॥२९८॥

धौरी मेरी गाइ बियानी।
सखनि कह्यौ तुम जेँवहु बैठे स्याम चतुरई ठानी।
गाइ नहीं ह्वां बछरा नाहीं ह्वां है राधा रानी।
सखा हँसत मन ही मन कहि कहि ऐसे गुननि निधानी।
जननी भेद नहीं कछु जानै बार बार अकुलानी।
सूर स्याम भूखौ उठि धायौ मरै न गाइ बियानी ॥२९९॥

नवल निकुंज नवल नवला मिलि नवल निकेतन रुचिर बनाए।
बिलसत विपिन बिलास बिबिध बर बारिज बदन बिकच सचु पाए।
लागत चंद्र मयूष सु तौ तनु लताभवन रंध्रनि मग आए।
मनहुँ मदन बल्ली पर हिमकर सींचत सुधाधार सत नाए।
सुनि सुनि सोचति स्रवन सुंदरी मौन किए मोदति मन लाए।
सूर सखी राधा माधव मिलि क्रीडत हैं रति पतिहिँ लजाए ॥३००॥

---

२९७. सचु पैहौं = प्रसन्न होऊँगी। नातरु...लैहौं = नहीं तो जन्म भर तेरा नाम नहीं लूंगी (क्रोधनाट्य)। बातनि भोरी = बातों में भुलावा देकर।

३००. मयूष = किरण। रंध्रनि = छिद्रों से।

रीझे स्याम नागरी छबि पर।
प्यारी एक अंग पर अटकी यह गति भई परसपर ।
देह दसा की सुधि नहिँ काहू नैन नैन मिलि अटके
इंदीवर राजीव कमल पर जुग खंजन जनु लटके।
चकित भए तन की सुधि आई बन ही मैं भइ राति।
सूर स्याम स्यामा बिहार करि सो छबि की एक भांति ।।३०१।।

राधा अति हीं चतुर प्रबीन।
कृष्न कौं सुख दै चली हँसि हंसगति कटि छीन।
हार कैं मिस इहां आई स्याम मनि कैं काज।
भयौ सब पूरन मनोरथ मिले स्री ब्रजराज।
गांठि आंचर छोरि कै मोतिसरी लीन्हीं हाथ।
सखी आवत देखि राधा लई ताकौं साथ।
जुवति बूझतिँ कहां नागरि निसि गई इक याम।
सूर ब्यौरौ कहि सूनायौ मैं गई तेहिँ काम ।।३०२।।

राधा स्याम स्याम राधा रँग।
पिय प्यारी कौं हिरदयँ राखत प्यारी रहति सदा पिय कैं सँग।
नागरि नैन चकोर बदन-ससि, पिय मधुकर अंबुज सुंदरि मुख।
चाहत अरस परस ऐसैं करि हरि नागरि नागरि नागर सुख।

---

३०१. एक अंग पर अटकी = किसी एक अंग को देखकर ठहर गई।
एक भाँति = बेजोड़; अप्रतिम।

३०२. ब्यौरौ = हवाला।

३०३. हरि नागरि... सुख = श्रीकृष्ण राधा का और राधा श्रीकृष्ण का इसी प्रकार सुखपूर्वक स्पर्श चाहते हैं।

जो मेरी कृत मानहु मोहन करि ल्याऊं मनुहारि।
सूर रसिक तब ही पै बदिहौं मुरली सकौ सँभारि ॥३०४

नयनों के प्रति

नैना नहिँ आवैं तुव पास।
कैसेंहू करि निकसे ह्यां तैं अति ही भए उदास।
अपने स्वारथ के सब कोई मैं जानी यह बात।
यह सोभा सुख लूटि पाइ कै अब वै कहा पत्यात।
षटरस भोजन त्यागि कहौ को रूखी रोटी खात।
सूर स्याम रस रूप माधुरी एते पर न अघात ॥३०५॥

नैन परे हरि पाछें री।
मिले अतिहि अतुराइ स्याम कौं रीझे नटवर काछें री।
निमिष नहीं लागत एकटक हीं निसि बासर नहिँ जानत री।
निरखत अंग अंग की सोभा ताही पर रुचि मानत री।
नैन परे परबस री माई तिन कौं उन बस कीन्हे री।
सूरज प्रभु सेवा करि रिझए उन अपने करि लीन्हे री ॥३०६॥

इन बातनि कहुँ होति बड़ाई।
लूटत हैं छबि रासि स्याम की मनौ परी निधि पाई।
थोरैं ही मैं उघरि परैंगे अतिहिं चले इतराई।
डारत खात देत नहिँ काहूं ओछैं घर निधि आई।

---

३०४. कृत = उपकार। मनुहारि = मनाना, चिरिया बिनती करना। मुरली सकौ सँभारि = वंशी हाथ में रख सको।
३०५. पत्यात = विश्वास करना; धोखा खाना।
३०७. परी निधि = पड़ा हुआ खज़ाना। उघरि परैंगे = खुल जायँगे। (असलियत छिपी नहीं रहेगी)। ओछैं घर = ओछे मनुष्य के घर में।

यह संपति है तिहूं भुवन की सबै इनहिँ अपनाई।
धोखैं रहत सूर के स्वामी काहूं नहीं जनाई ॥३०७॥

इन नैननि मोहिँ बहुत सतायौ।
अबलौं कानि करी मैं सजनी बहुतै मूंड चढ़ायौ।
निदरे रहत गहे रिस मोसौं मोहीं दोष लगायौ।
लूटत आपुन स्री अँग सोभा मनु निधनी धन पायौ।
निसिहू दिन ये करत अचगरी मनहि कहा धौं आयौ।
सुनहु सूर इनकौं प्रति पालत आलस नैंकु न लायौ ॥३०८॥

नैन करैं सुख हम दुख पावैं।
ऐसौ को परबेदन जानै जासौं कहि जु सुनावैं।
तातैं मौन भलौ सबही तैं कहि क्यौं मान गँवावैं।
लोचन मन इंद्री हरि कौं भजि तजि हमकौं रिस पावैं।
वै तौ गए आपने कर तैं बृथा जीव भरमावैं।
सूर स्याम हैं चतुर सिरोमनि तिनसौं भेद सुनावैं ॥३०९॥

नैननि तैं यह भई बड़ाई।
घर घर इहै चवाव चलावत हम सौं भेंट न माई।
कहां स्याम मिलि बैठी कबहूं कहनावति ब्रज ऐसी।
लूटहिँ ये, उपहास हमारौ, यह तौ बात अनैसी।
एई घर घर कहत फिरत हैं कहा करैं पचिहारी।
सूर स्याम यह सुनत हँसत हैं नैन किए अधिकारी ॥३१०॥

---

३०७. काहूं नहीं जनाई = किसी ने उन्हें नेत्रों के दुर्गुण नहीं बताये।
३०९. परबेदन = दूसरे की वेदना या दुःख। जीव भरमावैं = जीव को भ्रमित करते रहते हैं।
३१०. कहनावति = किंवदन्ती; चर्चा।

जे लोभी ते देहिँ कहा री।
ऐसे नैन नहीं मैं जाने जैसे निठुर महा री।
मन अपनौ कबहूं बरु ह्वैहै ये नहिँ होहिँ हमारे।
जब तैं गए नंदनंदन ढिग तब तैं फिरि न निहारे।
कोटि करौं वे हमहिँ न मानैं गीधे रूप अगाध।
सूर स्याम जौ कबहूं आसैं रहै हमारी साध ॥३११॥

ऐसे अपस्वारथी नैन।
अपनोइ पेट भरत हैं निसिदिन औरनि लैन न दैन।
बस्तु अपार परची ओछैं कर ये जानत घटि जैहै।
को इनसौं समुझाइ कहै यह दीन्हें ही अधिकैहै।
सदा नहीं रैहौ अधिकारी नाउँ राखि जौ लेते।
सूर स्याम सुख लूटैं आपुन औरनि हूं कौं देते ॥३१२॥

सेवा इनकी बृथा करी।
ऐसे भए दुखदायक हमकौं एहीं सोच मरी।
घूंघट ओट महल मैं राखत पलक कपाट दिऐं।
ये जोइ कहैं करैं हम सोई नाहिन भेद हिऐं।
अब पाई इनकी लँगराई रहते पेट समाने।
सुनहु सूर लोचन बटपारी गुन जोइ सोइ प्रगटाने ॥३१३॥

नैन भए बोहित के काग।
उड़ि उड़ि जात पार नहिँ पावैं फिरि आवत नहिँ लाग।

---

३११. रहै हमारी साध = हमारी अभिलाषा पूरी हो।
३१२. नाउँ राखि = नाम कमाना; यश-लाभ करना।
३१३. पेट समाने = हृदय में पैठे रहते थे। बड़ी अभिन्नता जनाते थे।
३१४. बोहित के काग = जहाज के कौए। लाग = ठहरने का स्थान; अड्डा।

ऐसी दसा भई री इनकी अब लागे पछितान।
मो बरजत बरजत उठि धाए नहिँ पायौ अनुमान।
वह समुद्र, ओछे बासन ये, धरैं कहां सुख-रासि।
सुनहु सूर ये चतुर कहावत वह छबि महा प्रकासि ॥३१४॥

नैननि सौं झगरौ करिहौं री।
कहा भयौ जौ स्याम संग हैं बांह पकरि सन्मुख लरिहौं री।
जनमहि तैं प्रतिपाल बड़े किए दिन दिन कौ लेखौ करिहौं री।
रूप लूटि कीन्हौ तुम काहैं अपने बांटे कौ धरिहौं री।
एक मातु पितु भवन एक रहे मैं काहैं उनकौं डरिहौं री।
सूर अंस जौ नहीं देहिंगे उनकैं ढँग मैं हूं ढरिहौं री ॥३१५॥

आँखों के प्रति

अँखियां हरि कैं हाथ बिकानी।
मृदु मुसकानि मोल इन लीन्ही यह सुनि सुनि पछितानी।
कैसैं रहत रहीं मेरैं बस अब कुछ औरै भांति।
अब वै लाज मरतिँ मोहिँ देखत बैठीं मिलि हरि पांति।
सपने की-सी मिलन करति हैं कब आवति कव जाति।
सूर मिली ढरि नँदनंदन कौं अनत नहीं पतियाति ॥३१६॥

---

३१४. वह समुद्र = कृष्ण का सौंदर्य अपार समुद्र है। ओछे बासन = ये छिछले बर्तन हैं (नेत्र)।

३१५. बांटे = हिस्सा। उनकैं...ढरिहौं = उन्हीं की आदत मैं भी पकड़ूंगी।

३१६. सपने की-सी मिलन करति हैं = स्वप्न का मिलन जैसा अवास्तविक होता है वैसा ही इनका मिलन है।

अँखियन स्याम अपनी करीं।
जैसेंही उन मुँह लगाई तैसेंही ये ढरीं।
इन किए हरि हाथ अपनैं दूरि हमतैं परीं।
रहति बासर रैनि इकटक छाँह घाम खरीं।
लोक लाज निकासि निदरीं नहीं काहुहिँ डरीं।
ए महा अति चतुर नागरि चतुर नागर हरी।
रहति डोलत संग लागी डटति नाहीं टरी।
सूर हम जब हटकि हटकतिँ बहुत हम पर लरीं ।।३१७।।

धन्य धन्य अँखियां बड़ भागिनि।
जो बिनु स्याम रहतिं नहिँ नैंकहु कीन्ही बनै सुहागिनि।
जिनकौं नहीं अंग तैं टारत निसिदिन दरसन पावैं।
तिनकी सरि कहि कैसैं कोई जे हरि कैं मन भावैं।
हम ही तैं ये भईं उजागरि अब हम पै रिस मानैं।
सूर स्याम अति बिबस भए हैं कैसैं रहत लुभानैं ।।३१८।।

रास

सरद निसि देखि हरि हरष पायौ।
बिपिन बृंदा सघन सुभग फूले सुमन रास रुचि स्याम के मनहिँ आयौ।
परम उज्वल रैनि छिटकि रही भूमि पर सदच फूल तरुन प्रति लटकि लागे।
तैसुई परम रमनीक जमुना पुलिन त्रिबिध बहै पवन आनंद जागे।
राधिका रवन बन भवन सुख देखि कै अधर धरि बेनु सुललित बजाई।
नाम लै लै सकल गोपकन्यानि के सबनि कैं स्रवन वह धुनि सुनाई।

---

३१७. डटति = डटकर बैठना; स्थिर होना।
३१८. उजागरि = यशस्विनी।

सुनत उपज्यौ मैन परत काहु न चैन सब्द सुनि स्रवन भइ बिकल भारी।
सूर प्रभु ध्यान धरि कै चली उठि सबै भवन जन नेह तजि घोष नारी ।।३१९।।

मुरली मधुर बजायौ स्याम।
मन हरि लियौ भवन नहिँ भावै ब्याकुल ब्रज की बाम।
भोजन भूषन की सुध नाहीं तन की नहीं सँभार।
गृह गुरु लाज सूत सौं तोरचौ डरी नहीं ब्यवहार।
करत सिँगार बिबस भईं सुंदरि अंगनि गईं भुलाइ।
सूर स्याम बन बेनु बजावत चित हित रास रमाइ ।।३२०।।

करत सिंगार जुवती भुलाहीं।
अंग सुधि नहीं उलटे बसन धारहीं एक एकनि कछू सुरति नाहीं।
नैन अंजन अधर अंजहीं हरष सौं स्रवन ताटंक उलटे सँवारैं।
सूर प्रभु मुख ललित बेनु धुनि बन सुनत चलीं बेहाल अंचल न धारैं ।।३२१।।

मन गयौ चित्त स्याम सौं लाग्यौ।
नाना बिधि जेंवन करि परस्यौ पुरुष जेंवावत त्याग्यौ।
इक पय प्यावत चली तजि बालक छोह नहीं तब कीन्हौ।
चली धाइ अकुलाइ सकुच तजि बोलि बेनु धुनि लीन्हौ।
इक पति सेवा करत चली उठि ब्याकुल तनु सुधि नाहिँ।
सूर निदरि बिधि की मरजादा निसि बन कौं सब जाहिँ ।।३२२।।

घर घर तैं निकसीं ब्रजबाला।
लै लै नाम जुवति जन जन के मुरली मैं सुनि सुनि ततकाला।

---

३१९. उपज्यौ मैन = कामना उत्पन्न हुई या जगी (मदन शब्द का प्रयोग सूरदास जी ने बहुत व्यापक अर्थ में किया है—वह इच्छा के स्फुरित होने का द्योतक है, इसके स्थूल (अनभीष्ट) अर्थ नहीं लगाने चाहिए)।

३२०. सूत सौं = कच्चे धागे के समान।

इक मारग इक घर तैं निकरी इक निकसति इक भई बेहाल।
इक नाहीं भवननि तैं निकरीं तिन पै आए परम कृपाल।
यह महिमा एई पै जानैं कवि सौं कहा बरनि यह जाइ।
सूर स्याम रस रास रीति सुख बिन देखैं आवै क्यौं गाइ ॥३२३॥

देखि स्याम मन हरष बढ़ायौ।
तैसियै सरद चांदनी निरमल तैसोइ रास रंग उपजायौ।
तैसियै कनक बदन सब सुंदरि इहिं सोभा पर मन ललचायौ।
तैसियै हंससुता पवित्र तट तैसोइ कल्पबृच्छ सुखदायौ।
करौं मनोरथ पूरन सबके इहिं अंतर इक खेद उपायौ।
सूर स्याम रचि कपट चतुरई जुबतिनि कैं मन यह भरमायौ ॥३२४॥

यह जुवतिनि कौ धरम न होइ।
धिग सो नारि पुरुष जो त्यागै धिग सो पति जो त्यागै जोइ।
पति कौ धरम रहै प्रतिपालैं जुवती सेवा ही कौ धर्म।
जुवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म।
बन मैं रैनि बास नहिं कीजै देख्यौ बन बृंदाबन आइ।
बिबिध सुमन सीतल जमुना जल त्रिबिध समीर परस सुखदाइ।
घर ही मैं तुम धरम सदा ही सुत पति दुखित होत तुम जाहु।
सूर स्याम यह कहि परबोधत सेवा करहु जाइ घर नाहु ॥३२५॥

निठुर बचन सुनि स्याम के जुवती बिकलानी।
चकित भईं सब सुनि रहीं नहिं आवै बानी।
मनौ तुषार कमलनि परयौ ऐसैं कुम्हिलानी।
मनौ महानिधि पाइ कै खोऐं पछितानी।

---

३२४. हंससुता = सूर्य की कन्या, यमुना।
३२५. परस = स्पर्श। परबोधत = प्रबोध या शिक्षा देते हैं। नाहु = नाथ, पति।

ऐसी ह्वै गई तन दसा पिय की सुनि बानी ।
सूर बिरह ब्याकुल भईं बूड़ीं बिन पानी ॥३२६॥

निठुर बचन जनि बोलहु स्याम ।
आस निरास करौ जनि हमरी ब्याकुल बचन कहति हैं बाम ।
अंतर कपट दूरि करि डारौ हम तन कृपा निहारौ ।
कृपासिंधु तुमकौं सब गावत अपनौ नाम सँभारौ ।
हमकौं सरन और नहिँ सूझै कापै हम अब जाहिँ ।
सूरदास प्रभु निज दासनि कै चूक कहा पछिताहिँ ॥३२७॥

तुम हौ अन्तरजामि कन्हाई ।
निठुर भए कत रहत इते पर तुम जानत नहिँ पीर पराई ।
पुनि पुनि कहत जाहु ब्रज सुंदरि दूरि करौ पिय यह चतुराई ।
आपुहि कही करौ पति सेवा ता सेवा कौं हम हैं आई ।
जो तुम कहौ तुमहि सब छाजै कहा कहैं हम प्रभुहिं सुनाई ।
सुनहु सूर इहैंई तन त्यागैं हम पै घोष गयौ नहिँ जाई ॥३२८॥

हरि सुनि दीन बचन रसाल ।
बिरह ब्याकुल देखि बाला भरे नैन बिसाल ।
चारु आनन लोर धारा बरनि कापै जाइ ।
मनहुँ सुधा तड़ाग उछले प्रेम प्रगटि दिखाई ।

---

३२६. बूड़ीं बिन पानी = बिना पानी के डूबीं अर्थात् जिसकी संभावना नहीं थी ऐसा दुःख आ पड़ा, बेमौत मरीं ।

३२७. संभारौ = स्मरण करो अथवा नाम की मर्यादा की रक्षा करो ।

३२८. छाजै = शोभा देता है; फबता है ।

३२९. लोर = आँसू । सुधा तड़ाग उछले = सुधा का तालाब उद्वेलित हो उठा ।

चंद्रमुख पर निडरि बैठे सुभग जोर चकोर।
पियत मुख भरि भरि सुधा ससि गिरत तापर भोर।
हरषि बानी कहत पुनि पुनि धन्य धनि ब्रजबाल।
सूर प्रभु करि कृपा जोह्यो सदय भए गोपाल ।।३२९।।

जहां स्यामघन रास उपायौ।
कुमकुम जल सुख बृष्टि रमायौ।
धरनी रज कपूरमय भारी।
बिबिध सुमन छबि न्यारी न्यारी।
जुवती जुरि मंडली बिराजैं।
बिच बिच कान्ह तरुनि बिच भ्राजैं।
अनुपम लीला प्रगट दिखायौ।
गोपिनि कौ कीयौ मन भायौ।
बिच स्री स्याम नारि बिच गोरी।
कनक खंभ मरकत खचि धोरी।
सोभा सिंधु हिलोर हिलोरी।
सूर कहा मति बरनै थोरी ।।३३०।।

बनी ब्रजनारि सोभा भारि।
पगनि जेहरि लाल लहँगा अंग पँचरँग सारि।

---

३२९. जोर चकोर = चकोरों की जोड़ी। सुधा ससि = चंद्रमा की सुधा का पान करते हैं। गिरत तापर भोर = भूलकर (ग़लती से) कुछ गिरा भी देते हैं। जोह्यौ = देखा।

३३०. उपायौ = रचना की। बिच . . . धोरी = श्रीकृष्ण और गोपियाँ इस प्रकार एक दूसरे के बीच में हैं मानों सोने के स्तंभो में मरकत (नील) मणि जड़कर बैठाई गई हो।

३३१. जेहरि = पायजेब, पैंजनी (एक आभूषण)।

किंकिनी कटि क्वनित कंकन कर चुरी झनकार।
हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिनि हार।
कंठस्री दुलरी विराजति चिबुक स्यामल बिंदु।
सुभग बेंदी ललित नासा रीझि रहे नँदनंद।
स्रवन पर ताटंक की छबि गौर ललित कपोल।
सूर प्रभु बस अति भए हैं निरखि लोचन लोल ॥३३१॥

निरखि ब्रजनारि छबि स्याम लाजै।
बिबिध बेनी रची मांग पाटी सुभग भाल बेंदी बिंदु इंदु लाजै।
स्रवन ताटंक लोचन चारु नासिका हंस खंजन कीर कोटि लाजै।
अधर बिद्रुम दसन नहीं छबि दामिनी सुभग बेसरि निरखि काम लाजै।
चिबुक तर कंठस्री माल मोतीनि छबि कुच उचनि हेमगिरि अतिहि लाजै।
सूर की स्वामिनी नारि ब्रज भामिनी निरखि पिय प्रेम सोभा सु लाजै ॥३३२॥

मानौ माइ घन घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर सोभित हरि ब्रजभामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई जामिनि।
सुंदर ससि गुन रूप राग निधि अंग अंग अभिरामिनि।
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं मुदित भईं ब्रजभामिनि।
रूपनिधान स्याम सुंदर घन आनँद मन बिस्रामिनि।
खंजन मीन मराल हरन छबि भाव भेद गजगामिनि।
को गति गुनहीं सूर स्याम सँग काम बिमोह्यौ कामिनि ॥३३३॥

---

३३१. चौकी = एक चौकोर आभूषण।

३३२. बेंदीबिंदु = सिरबेंदी; टीका या टिकुली।

३३३. मानौ माइ = विस्मयसूचक संबोधन। घन घन अंतर दामिनि = प्रत्येक घन के साथ एक दामिनी हो। घन दामिनि...भामिनि = श्रीकृष्ण और गोपियाँ इस प्रकार शोभित हैं जैसे घन के बगल में बिजली और बिजली के बगल में घन हो (पृथक् पृथक् रूप)।

रासमंडल मध्य स्याम राधा।
मनौ घन बीच दामिनी कौंधति सुभग एक है रूप द्वै नाहिँ बाधा।
नायिका अष्ट अष्टहुँ दिसा सोहहीं बनी चहुँपास सब गोपकन्या।
मिले सब संग नहिँ लखति कोउ परसपर बने षटदससहस कृष्न सेन्या।
सजे स्रिंगार नवसात जगमगि रह्यौ अंग भूषन रैनि बनी तैसी।
सूर प्रभु नवल गिरिधर नवल राधिका नवल ब्रजसुता मंडली तैसी ॥३३४॥

स्याम तनु राजति पीत पिछौरी।
उर बनमाल काछिनी काछे कटि किंकिनि छबि रोरी।
बेनी सुभग नितंबनि डोलति मंदगामिनी नारि।
सूथन जघन बांधि नाराबँद तिरनी पर छवि भारि।
नखनि रंग जावक की सोभा देखत पिय मन भावत।
सूरदास प्रभु तनु त्रिभंग ह्वै जुवतिनि मनहिँ रिझावत ॥३३५॥

नृत्यत स्याम नाना रंग।
मुकुट लटकनि भृकुटि मटकनि धरे नटवर अंग।
चलत गति कटि रुनित किंकिनि घूँघुरू झनकार।
मनौ हंस रसाल बानी अरस परस बिहार।
लसति कर पहुँची सो पुंजय मुद्रिका अति ज्यौति।
भाव सौं भुज फिरति जबहीं तबहिँ सोभा होति।
कबहुँ नृत्यत नारि गति पर कबहुँ नृत्यत आप।
सूर के प्रभु रसिक की मनि रच्यौ रास प्रताप ॥३३६॥

निरतत हैं दोउ स्यामा स्याम।
अंग मगन पिय तैं प्यारी अति निरखि चकित ब्रजबाम।

---

३३४. घन . . . कौंधति = घन के भीतर बिजली चमकती हो (संयुक्त रूप)। नायिका = मुख्य आठ गोपियाँ। सेन्या = सैन्य, दल।

३३५. रोरी = ध्वनि। सूथन = पायजामा जो लहँगे के साथ पहनते हैं। तिरनी = नीबी, घाँघरा बाँधने की डोरी।

तिरप लेति चपला सी चमकति झमकत भूषन अंग।
या छबि पर उपमा कहुं नाहीं निरखत बिबस अनंग।
स्री राधिका सकल गुन पूरन जाकैं स्याम अधीन।
सँग तैं होति नहीं कहुं न्यारी भई रहति अति लीन।
रस समुद्र मानौ उछलित भयौ सुंदरता की खानि।
सूरदास प्रभु रीझि थकित भए कहत न कछू बखानि ॥३३७॥

उघटत स्याम निरततिँ नारि।
धरे अधर उपंग उपजैं लेत हैं गिरिधारि।
ताल मुरज रबाब बीना किन्नरी रससार।
सब्द संग मृदंग मिलवत सुघर नंदकुमार।
नागरी सब गुननि आगरि मिलि चलति पिय संग।
कबहुँ गावति कबहुँ निर्तति कबहुँ उघटति रंग।
मंडली गोपाल गोपी अंग अँग अनुहारि।
सूर प्रभु धनि नवल भामिनि दामिनी छबि डारि ॥३३८॥

जब हरि मुरली नाद प्रकास्यौ।
जंगम जड़ थावर चर कीन्हे पाहन जल जु बिकास्यौ।
स्वर्ग पताल दसौ दिसि पूरन धुनि आच्छादित कीन्हौ।
निसि वर कल्प समान बढ़ाई गोपिनि कौं सुख दीन्हौ।
मैंमत भए जीव जल थल के तनु की सुधि न सँभार।
सूर स्याम मुख बेनु मधुर सुनि उलटे सब ब्यवहार ॥३३९॥

---

३३७. तिरप = नाच की एक गति।

३३८. उघटत = ताल का संकेत करते हैं। उपंग = एक मुखवाद्य। उपजैं लेत = बँधी तानों के अतिरिक्त नई तानें मिलाना। ताल..... रससार = भिन्न भिन्न बाजों के नाम।

३३९. पाहन = पत्थर। मैंमत = मस्त, मतवाला।

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर जल झरत पाहन बिफल बृच्छनि फले।
पय स्रवत गोधननि थन तैं प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव बिटप चंचल पात।
सुनत खग मृग मौन साध्यौ चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि न माति धर मैं जती जोग बिसारि।
ग्वाल गृह गृह सहज सोवत उहै सहज सुभाइ।
सूर प्रभु रस रास कैं हित सुखद रैनि बढ़ाइ ॥३४०॥

आजु हरि अदभुत रास रचायौ।
एकहि सुर सब मोहित कीन्हे मुरली नाद सुनायौ।
अचल चले चल थकित भए सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चंचल पवन थक्यौ नहिं डोलत जमुना उलटि बहायौ।
थकित भयौ चंद्रमा सहित मृग सुधा समुद्र बढ़ायौ।
सूर स्याम गोपिनि सुख दायक लायक झलक दिखायौ ॥३४१॥

स्यामा स्याम रिझावति भारी।
मन मन कहति और नहिं मो-सी पिय कौं कोऊ प्यारी।
ध्रुवा छंद ध्रुवपद जस हरिकौ हरि हीं गाइ सुनावति।
आपुन रीझि कंत कौं रिझवति यह जिय गर्ब बढ़ावति।
नृत्यति उघटति गति सँगीत पद सुनत कोकिला लाजति।
सूर स्याम नागर अरु नागरि सुलप मंडली राजति ॥३४२॥

तब नागरि अति गर्ब बढ़ायौ।
मो समान त्रिय और नहीं कोउ गिरिधर मैं ही बस करि पायौ।

---

३४०. धरनि. . . . धर = पृथ्वी उमंगित होकर अपने में नहीं समाती।
३४२. सुलप मंडली = छोटी-सी मंडली में (जिसमें चुनी हुई गोपियाँ हैं)।

जुइ जुइ कहति करत सुइ सोइ पिय मेरैं हित यह रास उपायौ।
सुन्दरि चतुर और नहिं मो-सी देह धरे कौ भाव जनायौ।
कबहुँक बैठि जाति हरि कर धरि कबहुँ कहति मैं अति स्रम पायौ।
सूर स्याम गहि कंठ रही त्रिय कंध चढ़ौं यह बचन सुनायौ ॥३४३॥

तब हरि भए अंतरधान।
जब कियौ मन गरब प्यारी कौन मो-सी आन।
अति थकित भइ चलति मोहन चलि न मो सौं जाइ।
कंठ भुज गहि रही यह कहि लेहु जबहिं चढ़ाइ।
गए संग बिसारि रस मैं बिरस कीन्हौ बाल।
सूर प्रभु दुरि चरित देखत तुरत भई बेहाल ॥३४४॥

बिकल ब्रजनाथ बियोगिनि नारि।
हा हा नाथ अनाथ करौ जनि टेरति बाहँ पसारि।
हरि जू के लाड गरब जो तनु सखि सकी न बचन सँभारि।
जनियत है अपराध हमारौ नहिँ कछु दोष मुरारि।
ढूंढ़ति बाट घाट बन घन तन मुरछि नैन जल धारि।
सूरदास अभिमान देह कें बैठी सरबस हारि ॥३४५॥

जो देखैं द्रुम के तरैं मुरछी सुकुमारी।
चकित भईं सब सुन्दरी यह राधा नारी।
याही कौं खोजति सबै यह रही कहाँ री।
धाइ परीं सब सुन्दरी जो जहां तहां री।

---

३४३. देह धरे कौ भाव = अहंता, अपने अस्तित्व की लौकिक भावना।
स्रम पायौ = थक गई हूँ।
३४४ रस मैं बिरस = रंग मे भंग।
३४५. बाहँ पसारि = दीनतापूर्वक ।

तन की तनकहुँ सुधि नहीं ब्याकुल भइँ बाला।
यह तौ अति बेहाल है कहँ गए गुपाला।
बार बार बूझतिँ सबै नहिँ बोलति बानी।
सूर स्याम काहैं तजी कहि सब पछितानी ॥३४६॥

स्याम सबनि कौं देखहीं वै देखति नाहीं।
जहाँ तहाँ ब्याकुल फिरैं तनु धीरज नाहीं।
कोउ बंसीबट कौं चली कोउ बन घन जाहीं।
देखि भूमि वह रास की जहँ तहँ पग छाहीं।
सदा हठीली लाडिली कहि कहि पछिताहीं।
नैन सजल जल ढारिकै ब्याकुल मन माहीं।
एक एक ह्वै ढूंढहीं तरुनी बिकलाहीं।
सूरज प्रभु कहुँ नहिँ मिले ढूंढ़ति द्रुम पाहीं ॥३४७॥

कहि धौं री बन बेलि कहूं तुम देखे हैं नँदनंदन।
बूझौं धौं मालती कहूं तैं पाए हैं तनुचंदन।
कहि धौं कुंद कदम्ब बकुल बट चंपक ताल तमाल।
कहि धौं कमल कहां कमलापति सुन्दर नैन बिसाल।
स्याम स्याम कहि कहति फिरतिँ यह धुनि बृंदाबन छायौ।
गरब जानि पिय अंतर ह्वै रहे सो मैं बृथा बढ़ायौ।
अब बिनु देखैं कल न परति छिन स्याम सुँदर गुन गायौ।
मृग मृगनी द्रुम बन सारस खग काहूं नहीं बतायौ।
मुरली अधर सुधारस लै तरु रहे जमुन के तीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ कहँ घनस्याम सरीर।
कहि धौं मृगी मया करि हम सौं कहि धौं मधुप मराल।
सूरदास प्रभु के तुम संगी हैं कहँ परम दयाल ॥३४८॥

---

३४७. पग छाहीं = पैरों के चिह्न।
३४८. तनुचंदन = चंदन के समान शीतल, सुख देनेवाले। कुंद = प्रसिद्ध सफ़ेद पुष्प। बकुल = मौलसरी।

अति ब्याकुल भईं गोपिका ढूंढ़तिं गिरिधारी।
बूझति हैं बन बेलि सौं देखे बनवारी।
जाही जूही सेवती करना कनिआरी।
बेलि चमेली मालती बूझतिँ द्रुम डारी।
खूझा मरुआ कुंद सौं कहैं गोद पसारी।
बकुल बहुल बट कदम पै ठाढ़ीं ब्रजनारी।
बार बार हा हा करैं कहुँ हौ गिरिधारी।
सूर स्याम कौ नाम लै लोचन जल ढारी ॥३४९॥

प्रगट भए नँदनदन आइ।
प्यारी निरखि बिरह अति ब्याकुल कर तैं लई उठाइ।
उभय भुजा भरि अंकम दीन्हौ राखी कंठ लगाइ।
प्रानहु तैं प्यारी तुम मेरैं यह कहि दुख बिसराइ।
हँसत भए अंतर हम तुम सौं सहज खेल उपजाइ।
धरनी मुरझि परीं तुम काहैं कहां गई चतुराइ।
राधा सकुचि रही मन जान्यौ कह्यौ न कछू सुनाइ।
सूरदास प्रभु मिलि सुख दीन्हौ दुख डारयौ बिसराइ ॥३५०॥

बहुरि स्याम सुख रास कियौ
भुज भुज जोरि जुरीं ब्रजबाला वैसैं ही रस उमगि हियौ।
वैसैंहि मुरली नाद प्रकास्यौ वैसैंहि सुर नर बस्य भए।
वैसैंहि उडगन सहित निसापति वैसैंहि मारग भूलि गए।

---

३४९. जाही = एक प्रकार की चमेली। जूही = यूथिका पुष्प। सेवती = सफ़ेद गुलाब। करना = सुदर्शन (एक पुष्प)। कनिआरी = कर्णिकार या कनकचंपा। बेलि = बेला। खूझा = एक गुच्छेदार फूल। मरुआ = बन-तुलसी की जाति का पौधा।

वैसीहि दसा भई जमुना की वैसुँहि गति जति पवन थक्यौ।
वैसुँहि नृत्यत रंग बढ़ायौ वैसुँहि बहुरौ काम जक्यौ।
वहै निसा वैसेंहि मन जुवती वैसेंही हरि सबनि भजें।
सूर स्याम वैसेइ मनमोहन वैसुँहि प्यारी निरखि लजे॥३५१॥

बिहरत रास रंग गुपाल।
नवल स्यामहिं संग सोभित नवल सब ब्रजबाल।
सरद निसि अति नवल उज्वल नव लता बन धाम।
परम निर्मल पुलिन जमुना कल्पतरु बिस्राम।
कोस द्वादस रास परिमिति रच्यौ नंद कुमार।
सूर प्रभु सुख दियौ निसि रमि काम कौतुकहार॥३५२॥

रास रमि स्रमित भई ब्रजबाल॥
निसि सुख दै जमुना तट लै गए भोर भयौ तिहिं काल।
मनकामना भई परिपूरन रही न एकौ साध।
षोडस सहस नारि सँग मोहन कीन्हौ सुख जु अगाध।
जमुना जल बिहरत नँदनंदन संग मिलीं सुकुमारि।
सूर धन्य धरनी बृंदाबन रबितनया सुखकारि॥३५३॥

बिहरत हैं जमुना जल स्याम।
राजति हैं दोउ बाहाँ जोरी दंपति अरु ब्रजबाम।
कोउ ठाढ़ी जल जानु जंघ लौं कोउ कहि हिरदै ग्रीव।
यह सुख बरनि सकै ऐसो को सुन्दरता की सींव।
स्याम अंग चंदन की आभा नागरि केसर अंग।
मलयज पंक कुमकुमा मिलि कै जल जमुना इक रंग।

३५१. जक्यौ = भौंचक होना।
३५२. परिमिति = पर्यंत, सीमा तक। काम कौतुकहार = विनोद-लीला करनेवाले।
३५३. साध = इच्छा।

निसि स्रम मिटचौ मिटचौ तनु आलस परसि जमुन भ पावन।
सूर स्याम जल मध्य जुवतिगन जन जन के मनभावन ॥३५४॥

जल क्रीड़ा सुख अति उपजायौ।
रास रंग मन तैं नहिं भूलत वहै भेद मन आयौ।
जुवती कर कर जोरि मंडली स्याम नागरी बीच।
चंदन अंग कुमकुमा छूटत जल मिलि तट भ ँ कीच।
जो सुख स्याम करत जुवती सँग सो सुख त्रिभुवन नाहिं।
सूर स्याम देखत नारिन कौं रीझि रीझि लपटाहिं॥३५५॥

ठाढ़े स्याम जमुना तीर।
धन्य पुलिन पवित्र पावन जहां गिरिधर धीर।
जुवति बनि बनि भई ठाढ़ी और पहिरे चीर।
राधिका सुख स्याम दायक कनक बरन सरीर।
लाल चोली नील डँडिया संग जुवतिनि भीर।
सूर प्रभु छबि निरखि रीझे मगन भयौ मन कीर॥३५६॥

ललकत स्याम मन ललचात
कहत हैं घर जाहु सुंदरि मुख न आवति बात।
षट सहस दस गोपकन्या रैनि भोगी रास।
एक छन भइ कोउ न न्यारी सबनि पुरई आस।
बिहँसि सब घर घर पठाई ब्रज गईं ब्रजबाल।
सूर प्रभु नँदधाम पहुँचे लख्यौ काहु न ख्याल ॥३५७॥

---

३५५. सूर.... लपटाहिं = श्रीकृष्ण देखते हैं, नारियाँ रीझ-रीझकर परस्पर एक दूसरे से लिपटती हैं।

३५६. सुख स्याम दायक = श्याम को सुख देनेवाली। कीर = शुकदेव जी।

३५७. ललकत.... ललचात = नियुक्त न होने की लालसा और लालच।

ब्रजबासी सब सोवत पाए।
नंदसुवन मति ऐसी ठानी घर लोगनि उन जाइ जगाए।
उठे प्रात गाथा मुख भाषत आतुर रैनि बिहानी।
ऐंडत अंग जम्हात बदन भरि कहत सबै यह बानी।
जो जैसे सो तैसे लागे अपनैं अपनैं काज।
सूर स्याम के चरित अगोचर राखी कुल की लाज ॥३५८॥

मान

अब जानी पिय बात तुम्हारी।
मो सौं तुम मुँह की मिलवत हौ भावति है वह प्यारी।
राखे रहत हृदय पर जाकौं धन्य भाग हैं ताके।
ऐसी कहौ लखी नहिं अबलौं बस्य भए हौ याके।
भली करी यह बात जनाई प्रगट दिखाई मोहिं।
सूर स्याम यह प्रान पियारी उर मैं राखी पोहि ॥३५९॥

सुनत स्याम चक्रित भए बानी।
प्यारी पिय मुख देखि कछुक हँसि कछुक हृदय रिस मानी।
नागरि हँसत हँसी उर छाया तापर अति भहरानी।
अधर कंप रिस भौंह मरोरयौ मनहीं मन गहरानी।
इकटक चितै रही प्रतिबिंबहिं सौति साल जिय जानी।
सूरदास प्रभु तुम बड़भागी बड़भागिनि जेहिं आनी ॥ ३६० ॥

---

३५९. मुँह की मिलवत = मुँह देखे की बात करते हो। पोहि = पिरोकर।
३६०. नागरि . . . भहरानी = राधा के हँसते ही वह छाया-मूर्ति (जो कृष्ण के हृदय पर थी पर जो वास्तव में राधा की परिछाहीं मात्र थी) भी हँस दी, यह देखकर राधा क्रुद्ध हो गईं। गहरानी = रूठ चली, भारी हो चली। जेहिं आनी = जिसे तुम लाये हो (वह भी बड़भागिनी है)।

मान करयौ तिय बिनु अपराधहि।
तनु दाहति बिनु काज आपनौ कहत डरत जिय बादहिं।
कहा रही मुख मूँदि भामिनी मोहिं चूक कछु नाहिं।
झझकि रही क्यौं चतुर नागरी देखि आपनी छाहिं।
अजहूँ दूरि करौ रिस उरतैं हिरदै ग्यान बिचारौ।
सूर स्याम कहि कहि पचि हारे हठ कीन्हौ जिय भारौ ॥३६१॥

आजु कछू घर कलह भयौ री।
बहै आजु अनमनी बत्यानी, यह कहि मान ठयौ री।
मौसौं कछुक कह्यौ नहिं मोहन सहज पठाई लैन।
कहा पुकार परी हरि आगें चलौ न देखौ नैन।
तेरौ नाम लेत हरि आगें कहत सुनाइ सुनाइ।
सूर सुनहु काकौ काकौ गथ तैं धौं लयौ छड़ाइ॥ ३६२॥

ते जु पुकारे हरि पै जाइ।
जिनकी यह सब सौंज राधिका तुरैं तनु लई छड़ाइ।
इंदु कहै हौं बदन बिगोयो, अलकन अलि समुदाइ।
नैननि मृग, बचननि पिक लूटे, बिलपत हरिहिं सुनाइ।
कमल, कीर, केहरि, कपोत, गज, कनक, कदलि, दुख पाइ।
बिद्रुम, कुंद, भुजंग संग मिलि सरन गए अकुलाइ।
अति अनीति जिय जानि सूर प्रभु पठई मोहिं रिसाइ।
बोली है ब्रजनारि बेगि चलि अब उत्तर दै आइ॥३६३॥

---

३६२. सहज = स्वाभाविक रूप से। देखौ नैन = अपनी आँखों देखो। गथ = पूजी।

३६३. सौंज = सामग्री। कमल . . भुजंग = यहाँ जो उपमान दिये गये हैं उनके उपमेय क्रमशः दिये जाते हैं—नेत्र, नासिका, कटि, कंठ, गति, वर्ण, जंघ, ओष्ठ, दंत और बाहु।

बिराजति राधा रूप निधान।
सुंदरता कौ पुंज प्रगट हीं को पटतर त्रिय आन।
सिंदुर सीस मांग मुक्तावलि कच कबरी अबिनान।
मनहुँ चंद्रमहिं कोपि हन्यौ रिपु राहु बिषम बलवान।
तरल तिलक ताटंक गंड पर झलकत कल बिबि कान।
मानहुँ ससि सहाय करिबे कौं रन बिरचे द्वै भान।
दीरघ नैन नासिका बेसरि अरुन अधर छबिमान।
खंजन सुक नहिं बिंब समिति कौं लज्जित भए अजान।
को कहि सकै उरोजन की छबि कंचन मेरु लजान।
स्रीफल सकुचि रहे दुरि कानन सिखर हियौ बिहरान।
रोमावलि त्रिबली छबि छाजति जनु कीन्हीं यह ठान।
कृस कटि सबल दंड बंधन मनौ बिधि दीन्हौ बंधान।
अंग अंग आभूषन की छबि का पर होइ बखान।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि मिलसहु स्याम सुजान ॥३६४॥

मनौ गिरिवर तैं आवति गंगा।
राजति अति रमनीक राधिका इहिं बिधि अधिक अनूपम अंगा।
गौर गात दुति बिमल बारि बिधि कटि तट त्रिबली तरल तरंगा।
रोमराजि मनौ जमुन मिली अध भँवर परत मानौ भ्रूभंगा।

---

३६४. अबिनान = न्यस्त नहीं, बल्कि बँधी हुई कवरी। चंद्रमा मुख का और राहु बँधी हुई कवरी का प्रतीक है। बिबि = दो। द्वैभान = दो सूर्य (कुंडल)। समिति = समता। सिखर . . . बिहरान = शिखर का हृदय फट पड़ा। कृस . . बंधान = पतली कमर को मजबूत रखने के लिए विधि ने त्रिवलीरूपी रस्सी बाँधने को दी है।

३६५. अध = नीचे के प्रदेश में। भँवर . . . भ्रूभंगा = भृकुटिभंग ही मानो उस गंगा की भँवरें हैं।

भुजँ बल पुलिन पास मिलि बैठे चारु चक्कवै उरज उतंगा ।
मानौ मुख मृदु पानि पंकरुह गुरुगति मनहुँ मराल बिहंगा ।
मनि गन भषन रुचिर तीर बर मध्यधार मोतिनमय मंगा ।
सूरदास मनु चली सुरसरी स्त्री गोपाल सागर सुख संगा ॥३६५॥

बिहरति मान सर सुकुमारि।
कैसेंहू निकसति नहीं हौं रही करि मनुहारि।
मौन पारि अपार रचि अवगाहि अंस जु बारि।
मन गह्यौ पै डरति नाहीं थकित प्रगट पुकारि ।
सूर स्याम सरोज लोचन डुलन जनु जलचारि।
ग्राह ग्राहक प्रान चाहक फिरति तहँ उर डारि।
चिकुर सैवल निकरि अरुझति सकति नहिं निरुवारि ।
नील अंचल पत्र पदुमिनि उरज जलज निहारि।
रच्यौ रचि रुचि मान मानिनि मन मराल मुरारि।
सूर आपुन आनिऐ गहि बांह नारि निकारि ॥३६६॥

स्यामा तू अति स्यामहि भावै ।
बैठत उठत चलत गौ चारत तेरियै लीला गावै।
पीतै पीत बसन भूषन सजि पीत धातु अँग लावै।
चंद्रानन सुनि मोर चंद्रिका माथैं मुकुट बनावै।

---

३६५. पुलिन = तट । मध्यधार = सरस्वती । मोतिनमय मंगा = मोतियों से सजी हुई (लाल) माँग। सूरदास . . संगा = सूरदास कहते हैं—यह राधारूपी गंगा सुखपूर्वक श्रीकृष्णरूपी सागर से मानो मिलने जा रही हैं।

३६६. बिहरति . . सुकुमारि = सुकुमारी राधा मानरूपी जलाशय में पैठी हुई है। मौन . . बारि = मौनरूपी दुर्भेद्य पारी (सीमा) बनाकर वह वारि में गरदन तक पैठी हुई है। अंस = कंधे । थकित . . . . पुकारि = मैं पुकार कर थक गई। डर डारि = निर्भय होकर। सैवल = सेंवार। आपुन = आप ही, (हे कृष्ण) ।

अति अनुराग सैन संभ्रम मिलि संग परम सुख पावै।
बिछुरत तोहिं क्वासि राधा कहि कुंज कुंज प्रति धावै।
तेरौ चित्र लिखै अरु निरखै बासर बिरह गँवावै।
सूरदास रस रसी रसिक सौं अंतर क्यौं करि आवै॥३६७॥

रहि री मानिनि मान न कीजै।
यह जोबन अंजुरी कौ जल है ज्यौं गुपाल माँगै त्यौं दीजै।
छिनु छिनु घटति बढ़ति नहिं रजनी ज्यौं ज्यौं कला चंद्र की छीजै।
पूरब पुन्य सुकृत फल तेरौ काहें न रूप नैन भरि पीजै।
सौंह करति तेरैं पाइन की ऐसी जिअनि दसहूँ दिन जीजै।
सूर सु जीवन सफल जगत की बैरी बांधि बिबस करि लीजै॥ ३६८

चितयौ कमल नैन की कोर।
मनमथ बान दुसह अनियारे निकसे फूटि हिए उहिं ओर।
अति ब्याकुल धुकि धरनि परे ज्यौं तरुन तमाल पवन कैं जोर।
कहुँ मुरली कहुँ लकुट मनोहर कहुँ पट कहूं चंद्रिका मोर।
खन बूड़त खन ही खन उछलत बिरह सिंधु के परे झकोर।
प्रेम सलिल भीज्यौ पीरौ पट फट्यौ निचोरत अंचल छोर।
फुरै न बचन नैन नहिं उघरत मानहुँ कमल भए बिनु भोर।
सूर सु दरस सुधारस सींचहु मेटहु मुरछा नंदकिसोर॥३६९॥

---

३६७. रस रसी . . सौं = जिस रसिक के रस में तू रसी हुई है, उससे अंतर क्यों करती है ?

३६८. छिनु . . . रजनी = रात क्षण-क्षण घटती ही है (बढ़ती नहीं)।

३६९. फूटि = छेदकर। उहिं ओर = दूसरी तरफ़। पीरौ पट = पीतांबर। अंचल = पीले अंचल का छोर निचोड़ते हुए (कठोरता से काम लेते ही) फट गया (कृष्ण के प्रति सहानुभूति)।

यह रितु रूसिबे की नाहिं।
बरषत मेघ मेदिनी कैं हित प्रीतम हरषि मिलाहिं।
जे बेली ग्रीषम रितु डाहीं ते तरुवर लपटाहिं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन मिलन समुद्रहिं जाहिं।
जोबन धन है दिवस चारि कौ ज्यौं बदरी की छाहिं।
मैं दंपति रस रीति कही है समुझि चतुर मन माहिं।
सूरदास उठि चलहु राधिका सँग दूती पिय पाहिं॥३७०॥

प्यारी अंस परायौ वै री।
मेरी सीख सुनि रसिक राधिका मन मैं न्याउ चितै री।
आप आपनी तिथिवाई दुंहि अँचवत अमर सबै री।
हर सुरेस सुर सेष समुझि जिय क्यौं प्रभु पान करै री।
वह जूठौ ससि जानि बदन बिधु रच्यौ बिरंचि इहै री।
सौंप्यौ सुपत बिचारि स्याम हित सुतैं रही लहिलै री।
जा की जहां प्रतीति सूर सो सरबस तहाँ सचै री।
सिंधु सुधानिधि अरपि अबहिं उठि बिधु पुनि नहीं पचै री॥३७१॥

मान-निवारण

आजु राधिका रूप अन्हायौ।
देखत बनै कहत नहिं आवै मुख छबि उपमा अंत न पायौ।
अनुपम अलक तिलक केसरि की ता बिच सेंदुर बिंदु बनायौ।
मानौ पून्यौ चंद खेत चढ़ि लरि सुरभान सौं घायल आयौ।

---

३७०. बदरी की छाहि = बादल की छाया।
३७१. तिथिवाई = तिथि के अनुसार। सुपत = प्रतिष्ठित जानकर तुझे वह चंद्रमा (रूपी मुख) सौंपा था। सचै = संचित करता है। नहीं पचै री = हजम नहीं होगा (मान लाभकर सिद्ध न होगा।)
३७२. सुरभान = स्वर्भानु; राहु।

कानन की बारी अति राजति मनहुँ मदन रथ चक्र चढ़ायौ।
मानहुँ नाग जीति मनि माथैं भरि सोहाग कौ छत्र तनायौ।
बंकति भौंह चपल अति लोचन बेसरि रस मुकताहल छायौ।
मानौ मृगनि अमी भाजन भरि पिवत न बन्यौ दुहूं ढरकायौ।
अधर दसन रसना कोकिल ज्यौं तिमिर जीति बिच चिबुक लगायौ।
मनहुँ देखि रबि कमल प्रकासत तापर भृंगी सावक आयौ।
कंचुकि स्याम सुगंध सँवारी चौकी पर नग बन्यौ बनायौ।
मानौ दीपक उदित भवन मैं तिमिर सकुचि सरनागत आयौ।
भूषन भुजा ललित लटकन बर मानहुँ मिलि अलिपुंज सुहायौ।
एतेहुँ पर रूठी सूरज प्रभु लै दूती दरपन दिखरायौ।।३७२।।

मोहन मोहिनि अंग सिँगारत।
बेनी ललित ललित कर गूंथत सुंदर मांग सँवारत।
सीसफूल धरि पाटी पोंछत फूंदनि झँवा निहारत।
बंदन बिंदु, जराइ की बेंदी तापर बनै सुधारत।
तरिवन स्रवन नैन दोउ आंजत नासा बेसरि साजत।
बीरी मुख भरि चिबुक डिठौना निरखि कपोलनि लाजत।
नख सिख सजत सिँगार भाव सौं जावक चरननि सोहत।
सूर स्याम त्रिय अंग सँवारत निरखि आपु मन मोहत।।३७३।।

हिंडोला

झूलत स्याम स्यामा संग।
निरखि दंपति अंग सोभा लजित कोटि अनंग।
मंद त्रिबिधि बयारि सीतल अंग अंग सुगंध।
मचत उड़त सुबास सँग गन रहे मधुकर बंध।

---

३७३. फूंदनि झँवा = फुँदनी के झब्बे या गुच्छे को। जराइ की = जड़ाऊ; रत्नजटित। बीरी = पान।
३७४. मचत = पेंग मारते हुए सुगंधि उड़ती है जिस पर भौंरे बिंध रहे हैं।

तैसियै जमुना सुभग जहँ रच्यौ रंग हिँडोल ।
तैसियै ब्रजबधू बनि हरि चितै लोचन कोर।
तैसोई बृंदा बिपिन घन कुंज द्वार बिहार।
बिपुल गोपी बिपुल बन गृह रवन नंदकुमार ॥ ३७४ ॥

हिंडोरना माइ झूलत हैं गोपाल।
संग राधा परम सुंदरी चहूंघा ब्रजबाल।
सुभग जमुना पुलिन मोहन रच्यौ रुचिर हिँडोर।
लाल डांडी फटिक पटुली मनिन मरुवा घोर।
भौंर मयारिनि नील मरकत खचे पांति अपार।
सरल कंचन खंभ सुंदर रच्यौ काम सुतार।
भांति भांतिनि पहिरि सारी तरुनि नवसत अंग।
सुंदरी बृषभानु तनया नैन चपल कुरंग।
हँसति पिय सँग लेति झूमक लखति स्यामल गात।
मनौ घन मैं दामिनी छबि अंग मैं लपिटात।
कबहुँ पुलकति कबहुँ डरपति हँसत निरखति बारि।
कबहुँ देतिं झुलाइ गोपी गावहीं नवनारि।
सूर प्रभु के संग कौ सुख बरनि का पै जाइ।
अमर बरषत सुमन अंबर बिबिध अस्तुति गाइ ॥ ३७५ ॥

हिंडोरे झूलत स्यामा स्याम ।
ब्रज जुवती मंडली चहूंधा निरखत बिथकित काम।
कोउ गावति कोउ हरषि झुलावति कोउ पुरवति मन साध।
कोउ सँग मचति कहति कोउ मचिहौं उपज्यौ रूप अगाध।

---

३७५. डांडी = हिंडोले के डंडे। पटुली = हिंडोले का वह तख्ता जिस पर खड़े होते हैं। मरुवा = वह लकड़ी जिसमें हिंडोला लटकाते हैं। भौंर = हिंडोले की धरन। मयारिनि = हिंडोले का ऊपरी डंडा। सुतार = बढ़ई। झूमक = पैंग ।

३७६. मचति = झूलती है।

कोउ डरपति हा हा करि बिनवति प्यारी अंकम लाइ ।
गाढ़ैं गहति पियहिं अपनैं कर पुलकित अंग डराइ ।
अब जनि मचौ पाइ लागति हौं मोकौं देहु उतारि ।
यह सुनि हँसत मचत अति गिरिधर डरति देखि अति नारि ।
प्यारी टेरि कहति ललिता सौं मेरी सौं गहि राखि ।
सूर हँसति ललिता चंद्रावलि कहा कहति पियभाषि ।। ३७६ ।।

वंशी के प्रति

अधर रस मुरली सौतिनि लागी ।
जा रस कौं षटरितु तप कीन्हौ सो रस पिवति सभागी ।
कहाँ रही कहँ तैं ह्यां आई कौने याहि बोलाई ।
सूरदास प्रभु हम पर ताकौं कीन्हे सवति बजाई ।। ३७७।।

मुरली मोहिनी भई ।
करी जु करनि देव दनुजनि प्रति वह बिधि फेरि ठई ।
वह पयनिधि इन ब्रज सागर मथि पाइ पियूष नई ।
सिंधु सुधा हरि बदन इंदु की इहिं छल छीनि लई ।
आपु अँचै अँचवाइ सप्त सुर कीन्हे दिग बिजई ।
एकहि पुट उत अमृत सूर इत मदिरा मदन मई ।।३७८।।

जब जब मुरली के मुख लागत ।
तब तब स्याम कमल दल लोचन नख सिख तैं रस पागत ।

---

३७७. सौतिनि = सौत; सपत्नी । बजाई = खुलेआम; गा-बजाकर ।
३७८. सिंधु . . लई = उसने सिंधु की सुधा छल से छीनी थी इसने श्रीकृष्ण के मुख की सुधा छीनी है। आपु . . .बिजई = आप पीकर और सातों स्वरों को पिलाकर उन्हें दिग्विजयी बना दिया। एकहि . . . मई = एक ही अंजली में उधर अमृत बाँटती है और इधर हमें कामनारूपी मदिरा पिलाती है।

बात न कहत रहत टेढ़े ह्वाइ बाहँ अलिंगन मानत।
भृगुटी अधर बुंक नासापुट सूधौ चितवन त्यागत।
पल इक मांहि पलटि सो लीजत प्रगटत प्रीति अनागत।
सूरदास स्वामी बंसीबस मुरछि निमेष न जागत ॥३७९॥

ज्यौं ज्यौं मुरलिहिं महत दियौ।
त्यौं त्यौं निदरि स्याम कोमल तन बदन पियूष पियौ।
रोकैं रहति पानि पल्लव पुट होत न कछू बियौ।
बैठति अधरनि पीठ परमरुचि सकुचत नाहिं हियौ।
जान्यौ जग रतिपति सिव जारचौ सो इहिं सूर जियौ।
बिधि मरजाद मेटि इन जो जो रुचि आई सो कियौ ॥३८०॥

ग्वालिनी तुम कत उरहन देहु।
पूंछहु जाइ स्यामसुंदर कौं जिहिं बिधि जुरचौ सनेहु।
बारे ही तैं भई बिरत चित तज्यौ गाउँ गुनि गेहु।
एकै चरन रही ह्वै ठाढ़ीं हिम ग्रीषम रितु मेहु।
तज्यौ मूल साखा सौं पत्रनि सोच सुखानी देहु।
अगिनि सुलाकत मुरचौ न अँग मन बिकट बनावत बेहु।
बकतीं कहा बांसुरी कहि कहि करि करि तामस तेहु।
सूर स्याम इहि भांति रिझै कै तुमहु अधर रस लेहु ॥३८१॥

---

३७९. अनागत = अपूर्व ।

३८०. महत = प्रतिष्ठा । अधरनि पीठ = अधररूपी आसन पर। जियौ = पुनरुज्जीवित कर लिया है।

३८१ जुरचौ = जुड़ा है। बिरत चित = विरक्त मनवाली। गुनि गेहु = सोच समझकर घर गाँव छोड़ा । मेहु = वर्षा । सौं = सहित। अगिनि सुलाकत = तपा शलाका चुभोते हुए। बिकट = भयानक। बेहु = छेद । तामस तेहु = क्रोध और तेहा करके ।

बसंत

श्री बृंदाबन खेलहिं गुपाल।
सब बनि ठनि आईं ब्रज की बाल।
नव बल्ली सुंदर नव तमाल।
नव कमल महा नव नव रसाल।
अपनें कर सुंदर रचित माल।
अवलंबित नागर नंदलाल।
नव केसरि नव अरगजा घोरि।
छिरकतिं नागर कहँ नव किसोरि।
नव गोपबधू राजहीं संग।
गज मोतिनि सुंदर ललित मंग।
गोपीनि ग्वाल सुंदर सुदेस।
छिरकत सुगंध भए ललित भेस।
नंदनँदन के भ्रू बिलास।
आनंदित गावत सूरदास॥३८२॥

सुंदर बर सँग ललना बिहरति बसंत सरस रितु आई।
लै लै छरी सु कुँवरि राधिका कमल नैन पै धाई।
द्वादस बन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले।
मौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले।
सरिता सीतल बहति मंद गति रबि उत्तर दिसि आयौ।
प्रेम उमंगि कोकिला बोली बिरहिनि बिरह जगायौ।
ताल मृदंग बीन बांसुरी डफ गावत मधुरी बानी।
देतिं परसपर गारि मुदित ह्वै तरुनी बाल सयानी।

---

३८२. अवलंबित = लटक रही है। भ्रू बिलास = भौहों का मटकना।
३८३. रतनारे = लाल (यौवन का सूचक)। मौरे = मंजरी लग गई है।

सुरपुर नरपुर नागलोक जल थल क्रीडा रस पावैं।
प्रथम बसंत पंचमी लीला सूरदास गुन गावै॥ ३८३॥

होली

खेलत फाग ग्वालनि संग।
एक गावत एक नाचत एक करत बहु रंग।
बीन, मुरज, उपंग, मुरली, झांझ, झालरि, ताल।
पढ़त होरी बोलि गारी निरखि कै ब्रजबाल।
कनक कलसनि घोरि केसरि कर लिए ब्रजनारि।
जबहिं आवत देख तरुनिनि भजत दै किलकारि।
दुरि रही इक खोरि ललिता उत तें आवत स्याम।
धरे भरि अँकवारि औचक आइ कै ब्रजबाम।
बहुत ढीठौ दै रहे हौ जानिबी अब आज।
राधिका दुरि हँसति ठाढी निरखि पिय मुख लाज।
लई काहूं मुरलि कर तै काउ गह्यौ पट पीत।
गूंथि बेनी मांग पारे नैन आंजि अनीति।
गए कर तें झटकि मोहन नारि सब पछितात।
सीस धुनि कर मींजि बोलति भली लै गए भांति।
दांव हम नहिं लैन पायौ बसन लेतीं लाल।
सूर प्रभु कहँ जाउगे अब हम परी इहिं ख्याल॥ ३८४॥

स्यामा स्याम खेलत दोउ होरी। फाग मच्यौ अति ब्रज की खोरी।
इतहि बनी बृषभानु किसोरी। सँग ललिता चंद्रावलि जोरी।
ब्रजजुबती सँग राजति भोरी। बनि सिंगार स्री राधा गोरी।
उतहिँ स्याम हलधर दोउ जोरी। वारौं कोटि काम छबि थोरी।

---

३८३. सुरपुर नरपुर नागलोक = पृथ्वी, आकाश और पाताल।
३८४. मुरज = मृदंग।

ग्वार अबीरनि की लिए झोरी। सुरँग गुलाल अरगजा झोरी।
गावतिं सबै मधुर सुर गोरी। तान लेतिं दै दै झकझोरी।
राधा सहित चंद्रावलि दौरी। औचक लीन्ही पीत पिछौरी।
देखत ही लै गई अँजोरी। डारि गई सिर स्याम ठगौरी।
ग्वाल देत होरी की गारी। बैर कियौ हम सौं तुम भारी।
हँसति परसपर जोबन बोरी। लै आईं हरि पीत पिछोरी।
घात करति मन मुरली कौरी। अधरनि तैं नहिं टारत जो री।
भली करी सब हम तुम सौं री। सावधान अब होहु कह्यौ री।
स्याम चितै राधा मुख ओरी। नैन चकोर चंद्र दरस्यौ री।
पिय कौं पिय मोहिनी लगाइ। इहि अंतर गोपी हँसि धाइ।
गह्यौ हरषि भुज ललिता जाइ। गई स्याम की सब चतुराइ।
मनभाने सब करति बड़ाइ। राधा मोहन गांठि जोराइ।
करत सबै रुचि की पहुनाइ। नंद महर कौं गारी गाइ।
फगुवा हमकौं देहु दिवाइ। पँचरँग सारी बहुत मँगाइ।
लीन्ही जो जाकैं मन आइ। तुरत सबै जुवती पहिराइ।
खेलत फाग रह्यौ रस भारी। बृद्ध किसोर बाल अरु नारी।
अति श्रम जानि गए जल तीरा। ग्वाल ग्वालि हलधर हरि बीरा।
परम पुनीत जमुन जल रासी। क्रीडत जहां ब्रह्म अबिनासी।
धन्य धन्य सब ब्रज के बासी। बिहरत हैं हरि सँग करि हांसी।
जल क्रीडा तरुनिनि मिलि कीन्हौ। ब्रज नर नारिनि कौं सुख दीन्हौ।
करि अस्नान चले ब्रजधाम। करे सबनि के पूरन काम।
जो सुख नंद जसोदा पायौ। सो सुख नाहीं प्रगटि बतायौ।
सुर बनिता यह संधि बिचारैं। कैसैं हरि सँग हमहुँ बिहारैं।
धन्य धन्य ये ब्रज की बाला। धन्य धन्य गोकुल के ग्वाला।
सूर स्याम जन के सुखदायक। भुव प्रगटे हरि हलधर भायक ॥३८५॥

---

३८५. अँजोरी = छीनकर । पहुनाइ = स्वागत-सत्कार, आतिथ्य (विनोद में) । हलधर हरि बीरा = बलराम और कृष्ण दोनों भाई। संधि = मन्त्रणा।

जदुपति जल क्रीडत जुवति संग। सागर सकुचत तजि तरंग।
षोडस सहस अष्ट दस नारि। तिन में अति सोभित स्री मुरारि।
उडगन समेत ससि सिंधु बारि। मनु पुनि आयौ चित हित बिचारि।
मृगमद मलयज केसरि कपूर। कुमकुमा कलित छत अगर चूर।
जल ताकि परसपर छपत दूर। मनु धनुष निपुन संग्राम सूर।
चलत चारु कल बलय चीर। जनु जलद बूंद छोभित समीर।
बदन निकट कच चुवत नीर। मनु मधुप निकर प्यावत न धीर।
जहँ नारदादि मुनि करत गान। जग पूरित हरि जस सुर बितान।
सुर सुमन सघन बरषत बिमान। जै सूरज प्रभु सब सुख निधान॥३८६॥

स्री गोकुल नाथ बिराजत डोल।
संग लिए बृषभानु नंदिनी पहिरे नील निचोल।
कंचन खचित लाल मनि मोती हीरा जटित अमोल।
झुलवहिँ जूथ मिले ब्रजसुंदरि हरषित करहिँ कलोल।
खेलतिँ हँसतिँ परसपर गावतिँ बोलतिँ मीठे बोल।
सूरदास स्वामी पिय प्यारी झूलत हैं झकझोल॥ ३८७॥

अक्रूर का ब्रज-आगमन

कंस नृप अक्रूर ब्रज पठाए।
गए आगे लैन नंद उपनंद मिलि स्याम बलराम उन हृदय लाए।
उतरि स्यंदन मिल्यौ देखि हरष्यौ हियौ सोच मन यह भयौ कहा आयौ।
राज के काज कौ नाम अक्रूर यह किधौं कर लैन कौं नृप पठायौ।

---

३८६. सागर... समुद्र संकुचित होता है। मनु पुनि... बिचारि = पुराना प्रेम स्मरण करके चन्द्रमा ताराओं के सहित मानो दुबारा आया है। चीर = नील वस्त्र। छोभित समीर = वायु का झोंका पाकर।
३८७. डोल = पुष्पों से आच्छादित हिंडोला। निचोल = वस्त्र; सारी।
३८८. स्यंदन = रथ।

कुसल तेहिँ बूझि लै गए ब्रज निज धाम स्याम बलराम मिलि गए वाकौ।
चरन पखराइ कै सुभग आसन दियौ बिबिध भोजन तुरत दियौ ताकौ।
कियौ अक्रूर भोजन दुहुनि संग लै नर नारि ब्रज लोग सबै देखैं।
मनौ आए संग देखि ऐसे रंग मनहिँ मन परसपर करत मेषैं।
सारि जेवनार अँचवन कै भए सुद्ध दियौ तंबोर नँद हरष आगे।
सेज बैठारि अक्रूर सौं जोरि कर कृपा करी कत तब कहन लागे।
स्याम बलराम कौं कंस बोले हेत सौं नंद लै सुतनि हम पास आवैं।
सूर प्रभु दरस की साध अतिहीं करत आजु ही कह्यौ जनि गहरु लावैं॥३८८॥

चलत जानि चितवतिँ ब्रज जुवती मानहुँ लिखी चितेरे।
जहाँ सु तहाँ इकटक मग जोवत फिरत न लोचन फेरे।
बिसरि गई गति भांति देह की सुनत न स्रवननि टेरे।
मिलि जु गए मानौ पय पानी निबरत नहीं निबेरे।
लागे संग मतंग मत्त ज्यौं घिरत न कैसेँहु घेरे।
सूर प्रेम अंकुर आसा जिय दै नहिँ इत उत हेरे॥३८९॥

अनल तैं बिरह अगिनि अति ताती।
माधव चलन चहत मधुबन कौं सुने तपै अति छाती।
न्याइहि नागरि नारि बिरह बस जरत दिया ज्यौं बाती।
जे जरि मरी प्रगट पावक परि ते त्रिय अधिक सुहाती।
ढारतिँ नीर नैन भरि भरि सब ब्याकुलता मद माती।
सूर ब्यथा सोई पै जानै स्याम सुभग रँग राती॥ ३९०॥

---

३८८. मेषैं = कटाक्ष, फब्ती या व्यंग्य। तंबोर = पान।

३८९. गति-भाँति = अस्तित्व। निबरत = पृथक् होना। सूर...हेरे = सूरदास कहते हैं कि प्रेम और आशारूपी अंकुश के द्वारा श्रीकृष्ण ने गोपियों के मतंग (हाथी) रूपी हृदयों को थामा नहीं। उनकी ओर देखा ही नहीं।

३९०. न्याइहि = स्वभावत: ही; उचित कारणों से ही। सुहाती = सौभाग्यवती, सुखी।

स्याम गऐं सखि प्रान रहेंगे।
अरस परस ज्यौं बातैं कहियत तैसैं बहुरि कहैंगे।
इंदु बदन खग नैन हमारे जानति और चहैंगे।
बासर निसि कहुँ होत न न्यारे बिछुरन हृदयँ सहैंगे।
एक कहौं तुम आगैं बानी स्याम न जाहिं, रहैंगे।
सूरदास प्रभु जसुमति कौं तजि मथुरा कहा लहैंगे ।।३९१।।

मेरे कमलनैन प्रान तैं प्यारे।
इनकौ कौन मधुपुरी बैठत राम कृष्न दोऊ जन बारे।
जसुदा कहति सुनहु सुफलकसुत मैं पयपान जतन करि पारे।
ए कह जानहिं सभा राज की ए गुरुजन बिप्रहुँ न जुहारे।
मथुरा असुर समूह बसत है कर कृपान जोधा हत्यारे।
सूरदास स्वामी ये लरिका इन कब देखे मल्ल अखारे।। ३९२।।

मेरौ माइ निधनी कौ धन माधौ।।
बारंबार निरखि सुख मानति तजति नहीं पल आधौ।
छिन-छिन परसत अंग मिलावत प्रेम प्रगट ह्वै लाधौ।
निसि दिन चंद्र चकोर क्या छबि जनु मिटै न दरसन साधौ।
करि है कहा अक्रूर हमारौ दैहै प्रान अगाधौ।
सूर स्यामघन हौं नहिं पठऊं अबहि कंस किन बांधौ।।३९३।।

---

३९१. जानति और चहैंगे = हम जानती हैं; क्या किसी और को देखेंगे (देखकर जीवित रहेंगे)।

३९२. इनकौ... बैठत = मथुरा में इनका कौन बैठा हुआ है। पारे = पालन किया है।

३९३. लाधौ = प्राप्त किया; लाभ पाया। अगाधौ = अगाध गर्त में; गहरे समुद्र या गड्ढे में (दुःख की सूचना)।

जसोदा बार बार यौं भाषै।
है ब्रज में कोउ हितू हमारौ चलत गोपालहिं राखै।
कहा काज मेरे छगन मगन कौ नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलकसुत मेरे प्रान हतन कौं काल रूप ह्वै आयौ।
बरु ए गोदंन हरौ कंस सब मोहि बंदि लै मेलौ।
इतनैं ही सुख कमलनैन मेरौ अँखियनि आगै खेलौ।
बासर बदन बिलोकत जीवौं निसि निज अंकम लाऊं।
तेहिं बिछुरत जौ जियौं करमबस तौ हँसि काहि बुलाऊं!
कमलनैन गुन टेरत टरत अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहाँ लगि प्रगट जनाऊं दुखित नंदजू की रानी॥ ३९४॥

मोहन इतनौ मोहि चित धरिऐ।
जननी दुखित जानि कै कबहूं मथुरा गमन न करिऐ।
यह अक्रूर क्रूर कृत रचि कै तुमहिं लैन है आयौ।
तिरछे भये कर्मकृत पहिले बिधि यह ठाट बनायौ।
बार बार जननी कहि मो सौं माखन मांगत जौन।
सूर तिनहिं लैबे कौं आए करिहौ सूनौ भौन॥ ३९५॥

सुने नँदलाल मधुपुरी जात।
सकुचति कहि न सकति काहू सौं गुप्त हृदय की बात।
संकति बचन अनागत कोऊ कहि जु गई अधरात।
नींद न परै घटै नहिं रजनी कब उठि देखौं प्रात।
नँदनंदन तौ ऐसें लागे ज्यौं जल पुरइन पात।
सूरदास सँग तैं बिछुरत हैं कब ऐहैं कुसलात॥ ३९६॥

---

३९४. छगन मगन = प्यार से बच्चों के प्रति किया गया संबोधन।
३९५. तिरछे = टेढ़े, विपरीत।

मोहन नैंकु बदन तन हेरौ ।
राखौ मोहिं नात जननी कौ मदन गुपाल लाल मुख फेरौ।
पाछैं चढ़ौ बिमान मनोहर बहुरौ जदुपति होत अँधेरौ ।
बिछुरन भेंट देहु ठाढ़े ह्वै निरखौ घोष जन्म को खेरौ ।
माधौ सखा स्याम इन कहि कहि अपने गाइ ग्वाल सब घेरौ।
गये न प्रान सूर तेहिं अवसर नंद जतनकरि रहे घनेरौ ॥३९७॥

जबहीं रथ अक्रूर चढ़े।
सब रसना हरि नाम भाषि कै लोचन नीर बढ़े ।
महरि पुत्र कहि सोर लगायौ तरु ज्यौं धरनि लुठाइ ।
देखति नारि चित्र सी ठाढ़ी चितए कुँवर कन्हाइ ।
इतनेंहि मैं सुख दियौ सबनि कौं मिलिहैं अवधि बिताइ।
तनक हँसे मन दै जुवतिन कौं निठुर ठगौरी लाइ ।
बोलति नहीं रहीं सब ठाढ़ी स्याम ठगीं ब्रजनारि ।
सूर तुरत मधुबन पगु धारे धरनी के हितकारि ॥३९८॥

बिछुरे स्री ब्रजराज आज तौ नैननि की परतीति गई।
उठि न गए हरि संग तबहि तैं ह्वै न गए सखि स्याममई।
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई।
सांचे कूर कुटिल ये लोचन बृथा मीन छबि छीनि लई।
अब काहें जल मोचत सोचत समय गए तैं सूल नई।
सूरदास याही तैं जड़ भए इन पलकनि हठि दगा दई ॥३९९॥

---

३९७. नात = सम्बन्ध। बिछुरन भेंट = बिदाई की भेंट। नंद...घनेरौ = कठिन यत्न करके नंद अपने प्राण रोक रहे हैं।

३९८. महरि = यशोदा । लुठाइ = लोट रही है।

३९९. परतीति = प्रतिष्ठा। कूर = नीच। याही तैं जड़ भए = इसीलिए ये जड़ (अचल) हो गये (कृष्ण के साथ जा नहीं सके)। पलकनि...दई = पलकों ने धोखा दिया (वे मुँद गईं)।

तब न बिचारी री यह बात।
चलत न फेंट गही मोहन की अब ठाढ़ी पछितात।
निरखि निरखि मुख रहीं मौन ह्वै थकित भईं पलपात।
जब रथ भयौ अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात।
सबै अजान भईं उहिं अवसर धिग सु जसोमति मात।
सूरदास स्वामी के बिछुरें कौड़ी भरि न बिकात ॥४००॥

श्रीकृष्ण का मथुरा पहुँचना

स्री मथुरा ऐसी आजु बनी।
देखहु हरि जैसे पति आगम सजति स्रिंगार धनी।
मानहुँ कोट कसी कटि किंकिनि उपबन बसन सुरंग।
भूषन बसन बिचित्र देखियत सोभित सुंदर अंग।
सुनत स्रवन घरियार घोर धुनि पाइनि नूपुर बाजत।
अति संभ्रम अंचल चंचल गति धामनि ध्वजा बिराजत।
ऊंच अटनि पर छतरिनि की छबि सीसनि मानौं फूली।
कनक कलस कुच प्रकट देखियत आनँद कंचुकि भूली।
बिद्रुम फटिक पची परदा छबि जाल रंध्र की रेख।
मनहुँ तुम्हारें दरसन कारन भूले नैन निमेष।
चित दै अवलोकहु नँदनंदन पुरी परम रुचि रूप।
सूरदास प्रभु कंस मारि कै होहु इहां के भूप ॥४०१॥

रथ पर देखि हरि बलराम।
निरखि कोमल चारु मूरति हृदय मुकता दाम।

---

४००. पलपात = पलकों का गिरना।
४०१. धनी = स्त्री। कोट = क़िला (जो सोने का था)। सीसनि मानौं फूली = मानो शीशफूल (सिर का भूषणविशेष) हो।

कहतिँ पुर नारि यह मन हमारे।
रजक मार्‌यौ धनुष तोरि द्वै खंड किए हत्यौ गजराज त्यौं इनहुँ मारें।
तृषित अति नारि सबै मल्ल ज्यौं ज्यौं कहैं लरत नहिं स्याम हम संग काहें।
परसपर मत करत मारि डारौं इनहिं लखत ये चरित दुहुँ निमिष न चाहें।
कहा ह्वैहै दई होन चाहत कहा अबहिं मारत दुहुनि हमहि आगें।
सूर कर जोरि अंचल छोरि बिनवैं बचैं ए आजु बिधि इहै मांगें ॥४०४॥

भिर्‌यौ चानूर सौं नंद सुत बांधि कटि पीतपट फेंट रनरंग राजें।
द्विरद दंत कर कलित भेष नटवर ललित मल्ल उर सल्लि तल ताल बाजें।
पीन भुज लीन जे लच्छि रंजित हृदय नीलघन सीत तनु तुंग छाती।
देखि रह्याँ भेष अति प्रेम नर नारि सब बदतिँ तजि भीर रति रीति राती।
मत्त मातंग बल अंग दंभोलि दल काछनी लाल गजमाल सोहैं।
कमल दल नैन मृदु बैन बंदित बदन देखि सुरलोक नरलोक मोहैं।
बाहु सौं बाहु उर जानु सौं जानु की चरन सौं चरन धरि प्रगट पेलैं।
धमक दै घूंघरनि भीर भय बंधु जन सुभट पद पानि धरि धरनि मेलैं।
चित्त सौं चित्त मनिबंध मनिबंध सौं दृष्टि सौं दृष्टि धरि सिर चपैया।
जानि रिपुहानि तजि कानि जदुराज की बबकि उठि फूलि बसुदेव रैया।
ऐसैंही राम अभिराम सुरसेष बपु गह्यौ मुष्टिक महा मल्ल मार्‌यौ।
तोरि निज जनक डर केस गहि कंसि नर सूर हरि मंच तैं दुष्ट डार्‌यौ ॥४०५॥

कंस-वध

देखि नृप तमकि हरि चमकि तहांई गए दमकि लीन्हौ गिरह बाज जैसे।
धमकि मार्‌यौ घाउ गुमकि हिरदयँ रह्यौ झमकि गहि केस लै चले ऐसे।

---

४०४. दुहुँ निमिष न चाहैं = दोनों पलकें मुँदना नहीं चाहतीं।
४०५. दंभोलि = वज्र।
४०६. गुमकि = भीतरी चोट लगना।

ठेलि हलधर दियौ झेलि तब हरि लियौ महल कैं तरे धरनी गिरायौ।
अमर जयधुनि भई धाक त्रिभुवन गई कंस मार्‌यौ निदरि देवरायौ।
धन्य बानी गगन धरनि पाताल धनि धन्य हो धन्य बसुदेव ताता।
धन्य अवतार सुर धरनि उपकार कौ सूर प्रभु धन्य बलराम भ्राता ॥४०६॥

जय जय धुनि तिहुँलोक भई।
मार्‌यौ कंस धरनि उद्धार्‌यौ ओक ओक आनंदमई।
रजक मारि कोदंड बिभंज्यौ खेल करत गज प्रान लियौ।
मलन पछारि असुर संहारे तुरत सबनि सुरलोक दियौ।
पुर नर नारिनि कौं सुख दीन्हौ जो जैसौ फल सोइ लह्यौ।
सूर धन्य जदुबंस उजागर धन्य धन्य धुनि घुमरि रह्यौ ॥४०७॥

गोपिका-बिरह

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि ?
किधौं वहि इन्द्र हठिहि हरि बरज्यौ, दादुर खाए शेषनि।
किधौं वहि देस बकन मग छाँड़्यौ, धर बूड़ति न प्रवेसनि।
किधौं वहि देस मोर, चातक, पिक बधिकन बधे विशेषनि।
किधौं वहि देस बाल नहिं झूलति गावति गीत सहेसनि।
पथिक न चलत सूर के प्रभु पै जासौं कहौं सँदेसनि ॥४०८॥

बरु ये बदरा बरषन आए।
अपनी अवधि जानि, नँद-नन्दन! गरजि गगन घन छाए।
सुनियत है सुरलोक बसत हैं, सेवक सदा पराए।
चातक कुल की पीर जानिकै जहँ तहँ तैं उठि धाए।

---

४०६. झेलि = रोक लेना।
४०७. ओक ओक = घर घर।
४०८. शेषनि = साँपों ने। धर = धरा, पृथ्वी। सहेसनि = सहर्ष।
४०९. पराए = दूसरे के अर्थात् इन्द्र के।

द्रुम किए हरित, हरषि मिलीं बल्ली, दादुर मृतक जिवाए।
छाए निविड़ नीर तृण जहँ तहँ पंछिन हू प्रति भाए।
समझति नहिँ सखि! चूक आपनी बहुतै दिन हरि लाए।
सूरदास स्वामी करुनामय मधुबन बसि बिसराए ॥४०९॥

हमारे माई! मोरउ बैर परे।
घन गरजै बरजै नहिं मानत त्यों त्यों रटत खरै।
करि एक ठौर बीनि इनके पँख मोहन सीस धरै।
याही तें हम ही को मारत, हरि ही ढीठ करै।
कह जानिए कौन गुन, सखि री! हम सों रहत अरै।
सूरदास परदेस बसत हरि, ये बन नें न टरै ॥४१०॥

सखी री! हरिहि दोष जनि देहु।
जातै इते मान दुख पैयत हमरेहि कपट सनेहु।
बिद्यमान अपने इन नैनन्ह सूनो देखति गेहु।
तदपि सखी ब्रजनाथ विरह उर भिदि न होत बड़ बेहु।
कहि कहि कथा पुरातन, ऊधो! अब तुम अन्त न लेहु।
सूरदास तन तो यों ह्वैहै ज्यों फिरि फागुन मेहु ॥४११॥

देखियत कालिंदी अति कारी।
कहियौ, पथिक! जाय हरि सौं ज्यौं भई बिरह-जुर-जारी
मनु पलिका पै परी धरनि धँसि तरँग तलफ तनु भारी।
तटबारू उपचार-चूर मनु, स्वेद प्रबाह पनारी।

---

४११. बेहु = बेध, छेद। फागुन मेहु = जल-रहित, जीवन-रहित।
४१२. जुर = ज्वर, ताप। पलिका = पलंग। तरँग .... भारी = तरंग उठना मानो शरीर का तड़फड़ाना है। उपचार-चूर = औषध का चूर्ण। पनारी = धारा, बहाव।

बिगलित कच कुस कास पुलिन मनौ, पंकज कज्जल सारी।
भ्रमर मनौ मति भ्रमत चहूँ दिसि, फिरति है अंग दुखारी।
निसि दिन चकई ब्याज बकत मुख, किन मानहुँ अनुहारी।
सूरदास प्रभु जो जमुना-गति सो गति भई हमारी॥४१२॥

सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरहि तें सिंहासन बैठे, सीस नाय मुसकात।
सुरभी लिखी चित्र भीतिन पर तिनहिं देखि सकुचात।
मोर पंख को बिजन बिलोकत बहरावत कहि बात।
हमरी चरचा जो कोउ चालत, चालत ही चपि जात।
सूरदास ब्रज भले बिसारयौ, दूध दही क्यो खात ? ॥४१३॥

हरि न मिले, री माई! जन्म ऐसे ही लाग्यो जान।
जोवत मग द्यौस द्यौस बीतत जुग समान।
चातक पिक बयन, सखी! सुनि न परै कान।
चंदन अरु चंदकिरन कोटिक मनौ भानु।
जुवती सजे भूषन रन-आतुर मनौ त्रान।
भीषम लौं डासे मदन अर्जुन कै बान।
सोवति सर-सेज सूर, चल न चपल प्रान।
दक्षिण-रवि-अवधि अटक इतनीऐ जान॥४१४॥

तुम्हरे बिरह, ब्रजनाथ, अहो पिय! नयनन नदी बढ़ी।
लीने जात निमेष-कूल दोउ एते मान चढ़ी।

---

४१२. कास = तट के कुश-काश मानो बिखरे हुए केश हैं।
४१३. बिजन = बीजन, पंखा। चपि जात = दब जाते हैं।
४१४. त्रान = अंगत्राण, कवच।

गोलक-नव-नौका न सकत चलि, स्यो सरकनि बहि बोरति।
ऊरध स्वास-समीर तरंगन तेज तिलक-तरु तोरति।
कज्जल कीच कुचील किए तट अंतर अधर कपोल।
रहे पथिक जो जहां सो तहां थकि हस्त चरन मुख-बोल।
नाहिंन और उपाय रमापति बिन दरसन छन जीजै।
अस्रु-सलिल बूड़त सब गोकुल सूर सुकर गहि लीजै ॥४१५॥

हमको सपने हू में सोच।
जा दिन तें बिछुरे नँदनंदन ताही दिन को पोच।
मनु गोपाल आए मेरे आंगन, हँसि भुजबांह गही।
कहा करौं बैरिनि भइ निँदिया, नैकु न और रही।
ज्यों चकई प्रतिबिंब देखिकै आनंदी पिय जानि।
सूर, पवन मिस निठुर बिधाता चपल करचौ जल आनि ॥४१६॥

कोउ, माई! बरजे या चदहि।
करत है कोप बहुत हम्ह ऊपर, कुमुदिनि करत अनंदहि।
कहा कुहू, कहँ रवि अरु तमचुर, कहां बलाहक कारे?
चलत न चपल रहत रथ थकि करि, बिरहिनि के तन जारे।
निंदति सैल, उदधि, पन्नग कौ, सापति कमठ कठोरहिं।
देति असीस जरा देवी को, राहु केतु किन जोरहि?

---

४१५. स्यो = सहित। सरकनि = गति या प्रवाह से। तिलक = टीका या तिलक किनारे के पेड़ हैं (तिलक एक वृक्ष भी है)। कुचील = गंदा, मैला। हस्त चरन = ये सब मानो पथिक हैं।

४१६. आनंदी = आनंदित हुई।

४१७ बलाहक = बादल। कहाँ कुहू...कारे = इन सबके आने से चंद्रमा यातो छिप जाता है या मंद हो जाता है। निंदति...कठोरहिं = इनकी निंदा करती है, क्योंकि उस समुद्रमंथन में ये सब सहायक हुए थे जिससे चन्द्रमा निकला था। जरा = एक राक्षसी, जिसने जरासंध के दो खंड जोड़े थे।

ज्यों जलहीन मीन-तन तलफत त्योंहि तपत ब्रजबालहि।
सूरदास प्रभु बेगि मिलावहु मोहन मदन-गोपालहि ॥४१७॥

हरि परदेस बहुत दिन लाए।
कारी घटा देखि बादर की नैन नीर भरि आए।
पालागौं तुम्ह, बीर बटाऊ! कौन देस तैं धाए।
इतनी पतिया मेरी दीजौ जहां स्यामघन छाए।
दादुर मोर पपीहा बोलत सोवत मदन जगाए।
सूरदास स्वामी जो बिछुरे प्रीतम भए पराए ॥४१८॥

आजु घन स्याम की अनुहारि।
उनै आए सांवरे, सखि री! लेहि रूप निहारि।
इंद्रधनुष मनौ पीत बसन छबि, दामिनि दसन बिचारि।
जनु बगपांति माल मोतिन की, चितवत चित्त लेत हैं हारि।
गरजत गगन, गिरा गोविंद की सुनत नयन भरे बारि।
सूरदास गुन सुमिरि स्याम के बिकल भई ब्रजनारि ॥४१९॥

ऐसो सुनियत है द्वै सावन।
वहै बात फिर फिर सालति है स्याम कह्यौ है आवन।
तब तौ प्रीति करी, अब लागीं अपनौ कीयौ पावन।
यहि दुख सखी निकसि उत जैये जितै सुनै कोउ नावँ न।
एकहि बेर तजी हम्ह, लागे मथुरा नेह बढ़ावन।
सूर सुरति कत होति हमारी, लागीं नीकी भावन ॥४२०॥

कोकिल! हरि को बोल सुनाव।
मधुबन तैं उचटारि स्याम कहँ या ब्रज लै कै आव।
जाचक सरनहि देत सयाने तन, मन, धन, सब साज।
सुजस बिकात बचन के बदले, क्यों न बिसाहत आज।

---

४२०. नीकी = अच्छी या सुंदरी स्त्रियाँ।
४२१. उचटारि = उचाटकर। सरनहि = शरण में आये याचक को।

कीजै कछु उपकार परायौ यहै सयानौ काज।
सूरदास प्रभु कहु या अवसर बन बन बसंत बिराज।।४२१।।

भ्रमर-गीत

है कोइ वैसीई अनुहारि।
मधुबन तैं त आवत, सखि री! चितौ तु नयन निहारि।
माथे मुकुट, मनोहर कुण्डल, पीत बसन रुचिकारि।
रथ पर बैठि कहत सारथि सों ब्रज तन बांह पसारि।
जानति नाहिं न पहिचानति हौं मनु बीते जुग चारि।
सूरदास स्वामी के बिछरे जैसे मीन बिनु बारि।।४२२।।

कहौ कहां तें आए हौ।
जानति हौं अनुमान मनौं तुम यादवनाथ पठाए हौ।
वैसोइ बरन, बसन पुनि वैसेइ, तन भूषन सजि ल्याए हौ।
सबंसु लै तब संग सिधारे अब कापर बहिराए हौ।
सुनहु, मधुप! एकै मन सबको सो तौ वहां लै छाए हौ।
मधुबन की मानिनी मनोहर तहँहिं जाहु जहँ भाए हौ।
अब यह कौन सयानप ब्रज पर का कारन उठि धाए हौ।
सूर जहाँ लौं स्यामगात हैं जानि भले करि पाए हौ।।४२३।।

हमसौं कहत कौन की बातें?
सुनि! ऊधौ हम समुझत नाहीं फिरि पूंछति हैं तातैं।
को नृप भयौ कंस किन मारयौ का वसुदेव सुत आहि?
यहां हमारे परम मनोहर जीजतु है मुख चाहि।
दिनप्रति जात सहज गोचारन गोपसखा लै संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन गति पंग।

---

४२२. तन = ओर, तरफ़।
४२४. चाहि = देखकर। रजनीमुख = सन्ध्या। पंग = स्तब्ध।

को व्यापक पूरन अबिनासी, को बिधि बेद अपार ?
सूर बृथा बकवाद करत हौ; या ब्रज नन्दकुमार ॥४२४॥

गोकुल सबै गोपाल उपासी।
जोग अंग साधत जे ऊधौ ते सब बसत ईसपुर कासी।
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रस रासी।
अपनी सीतलताहि न छांड़त यद्यपि है ससि राहु गरासी।
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिन मांगति मुक्ति तजे गुनरासी ? ॥४२५॥

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्यौपार तिहारो ऊधौ ऐसोई फिरि जैहै।
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छाड़ि कै कटुक निँबौरी को अपने मुख खैहै ?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दैहै।
सूरदास प्रभु गुनहि छांड़ि कै को निर्गुन निरबैहै ?॥४२६॥

हमरे कौन जोग व्रत साधै ?
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को को इतनो अवराधै ?
जाकी कहूं थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इतै बांध को बांधै ?
आसन, पवन भूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै ?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गांठि को बांधै ? ॥४२७॥

---

४२५. रासी = रसी या पगी हुई। उदासी = विरक्त।
४२६. ठगौरी = ठगपने का सौदा। निँबौरी = नीम का फल। केना = सौदा; छोटा-मोटा साग मूली आदि का बदला।
४२७. अधारि = साधुओं की टेकने की लकड़ी। बांध = आडंबर।

तेरौ बुरौ न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस, सुनु, रसिक होत सो जानै।
दादुर बसै निकट कमलनि के जन्मन रस पहिंचानै।
अलि अनुराग उड़न मन बांध्यौ कहे सुनत नहिं कानै।
सरिता चलै मिलन सागर कौ कूल मूल द्रुम भानै।
कायर बकै, लौह तैं भाजै, लरै जो सूर बखानै ॥४२८॥

बरु वै कुब्जा भलौ कियौ।
सुनि सुनि समाचार ऊधौ मो कछुक सिरात हियौ।
जाको गुन, गति, नाम, रूप हरि, हारचौ फिरि न दियौ।
तिन अपनो मन हरत न जान्यौ हँसि हँसि लोग जियौ।
सूर तनक चन्दन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियौ।
और सकल नागरि नारिन को दासी दांव लियौ ॥४२९॥

रहु रे, मधुकर! मधुमतवारे।
कहा करौं निर्गुन लैकै हौं जीवहु कान्ह हमारे।
लोटत नीच परागपंक मैं पचत, न आपु सम्हारे।
बारम्बार सरक मदिरा की अपरस कहा उघारे।
तुम जानत हमहूं वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबकौ बिलमावत जेते आवत कारे।
सुन्दरस्याम कमलदल-लोचन जसुमति नन्ददुलारे।
सूरस्याम को सर्वस अर्प्यौ अब कापै हम लेहिं उधारे ॥४३०॥

काहे को रोंकत मारग सूधौ?
सुनहु, मधुप! निर्गुन-कंटक तैं राजपन्थ क्यौ रूंधौ?।

---

४२८. भानै = तोड़ती है। लौह = लोहा, हथियार।
४३०. सरक = मद्यपात्र। अपरस = विरस, रसहीन। उधारे = उधार में, उधार, कर्ज़।
४३१. रूँधौ = रोकते हो, छेंकते हो।

कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामघन जू धौं।
बेद पुरान सुमृति सब ढूँढ़ौ जुवतिन जोग कहूँ धों?
ताकौ कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधौ ॥४३१॥

निर्गुन कौन देश कौ बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति सांच, न हांसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन भेस है कैसो वहि रस में अभिलासी।
पावैगो पुनि कियो आपनौ जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यौ सो सूर सबै मति नासी ॥४३२॥

नाहिंन रह्यौ मन में ठौर।
नँदनंदन अछत कैसे आनिए उर और?
चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।
कहत कथा अनेक ऊधौ लोकलाभ दिखाय।
कहा करौं तन प्रेम-पूरन घट न सिंधु समाय?
स्यामगात सरोज आनन ललित अति मृदुहास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास ॥४३३॥

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनौ ब्रह्म दिखावहु, ऊधो! मुकुट-पितांबरधारी।
भजिहैं तब ताको सब गोपी सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत समान बतावत हमको जारहु स्याम बिसारी।
जे मुख सदा सुधा अँचवत हैं ते बिष क्यों अधिकारी?
सूरदास प्रभु एक अंग पर रीझि रहीं ब्रजनारी ॥४३४॥

---

४३१. परेखो = विश्वास। निबेरत = निबटाते हैं, वसूल करते हैं।
४३२. गाँसी = गाँस या कपट की बात, चुभनेवाली बात।

बिन गोपाल बैरन भइ कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भइँ बिषम ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन पानि घनसार सजीवनि दधिसुत किरन भानु भइँ भुंजैं।
ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियां भई बरन ज्यौं गुंजैं ।।४३५।।

सँदेसनि मधुबन कूप भरे।
जे कोइ पथिक गए हैं ह्यांतै फिर नहिं गवन करे।
कै वै स्याम सिखाय समोधे कै वै बीच मरे?
अपने नहिं पठवत नँदनंदन हमरेउ फेरि धरे।
मसि खूंटा, कागर जल भीजै, सर दौ लागि जरे।
पाती लिखैं कहो क्यों करि जो पलक कपाट अरे? ।।४३६।।

ऊधौ ब्रज की दसा बिचारौ।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी जोगकथा बिस्तारौ।
जेहि कारन पठए नँदनंदन सो सोचहु मन माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं।
तुम निज दास जो सखा स्याम के संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा गहत हौ?
वै अति ललित मनोहर आनन कैसे मनहिं बिसारौं।
योग युक्ति औ मुक्ति बिबिध बिधि वा मुरली पर वारौं।

---

४३५. दधिसुत = उदधिसुत, चंद्रमा। भुंजैं = भूनती हैं। कदन = छुरी। बरन = वर्ण, रंग। गुंजै = गुंजा, घुँघची।

४३६. समोधे = समझा-बुझा दिया। खूँटा = चुक गई। दौ = दावाग्नि, आग।

४३७. निज = खास।

जेहि उर बसे स्यामसुंदर घन क्यों निर्गुन कहि आवै।
सूरस्याम सोइ भजन बहावै जाहि दूसरो भावै ॥४३७॥

ऊधौ ! जोग बिसरि जनि जाहु।
बांधहु गांठि कहूं जनि छूटै फिरि पाछे पछिताहु।
ऐसी बस्तु अनूपम मधुकर मरम न जानै और।
ब्रजबासिन के नाहिं काम की तुम्हरे ही है ठौर।
जो हरि हित करि हमको पठयो सो हम तुमको दीन्हीं।
सूरदास नरियर ज्यों बिष को करै बन्दना कीन्हीं ॥४३८॥

ऊधौ प्रीति न मरन बिचारै।
प्रीति पतंग जरै पावक परि, जरत अंग नहिं टारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन चढ़ि गिरत न आप सम्हारै।
प्रीति मधुप केतकी कुसुम बसि कण्टक आपु प्रहारै।
प्रीति जानु जैसे पय पानी जानि अपनपो जारै।
प्रीति कुरंग नादरस लुब्धक तानि तानि सर मारै।
प्रीति जान जननी सुत-कारन को न अपनपो हारै?
सूरस्याम सों प्रीति गोपिन की कहु कैसे निरुवारै ॥४३९॥

ऊधौ जुवतिन ओर निहारौ।
तब यह जोग-मोट हम आगे हिये समुझि बिस्तारौ।
जे कच स्याम आपने कर करि नितहिं सुगन्ध रचाए।
तिनकौ तुम जो बिभूति धौरि कै जटा लगावन आए।
जेहि मुख मृगमद मलयज उबटति, छन छन धोवति मांजति।
तेहि मुख कहत खेह लपटावन सो कैसे हम छाजति?
लोचन आजि स्याम-ससि दरसति तबहीं ये तृप्ताति।
सूर तिन्हैं तुम रबि दरसावत यह सुनि सुनि करुआति ॥४४०॥

---

४३९. अपनपो = अपनापन, आत्मभाव।
४४०. करुआति = दुखती हैं।

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती करम करम करि न्हाते।
तुम तौ टेव जानतिहि ह्वैहौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहि माखन रोटी भावै।
अब यह सूर मोहिं निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलड़ैतै लालन ह्वैहैं करत सँकोच ॥४४१॥

यद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखिकै मोहन के मुख जोग ।
प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मांगे दैहै।
को मेरे बालक कुँवरकान्ह को छन छन आगो लैहै ?
कहियो जाय पथिक घर आवैं राम स्याम दोउ भैया।
सूर वहां कत होत दुखारी जिनके मो सी मैया ॥४४२॥

ऊधौ ! जो हरि हितू तिहारे।
तौ तुम कहियो जाय कृपाकै जे दुख सबै हमारे।
तन तरुवर ज्यों जरति बिरहिनी, तुम दव ज्यों हम्ह जारे।
नहिं सिरात, नहिं जरत छार ह्वै सुलगि सुलगि भए कारे।
जद्यपि उमगि प्रेमजल भिजवत वरषि बरषि घनतारे।
जौ सींचे यहि भांति जतन करि तौ इतने प्रतिपारे।
कीर, कपोत, कोकिला, खंजन बधिक-बियोग बिडारे।
इन दुःखन क्यों जियहिं सूरप्रभु ब्रज के लोग बिचारे ? ॥४४३॥

---

४४१. धाय = धात्री, दाई। अलकलड़ैतै = दुलारे, लाड़ले।
४४३. सिरात = ठंडी होती है। घनतारे = आँख की पुतलीरूपी बादल।

ऊधौ, पालागौं भले आए।
तुम देखे जनु माधव देखे, तुम त्रैताप नसाए।
नंद जसोदा नातौ टूटौ वेद पुरानन गाए।
हम अहीरि, तुम अहिर नाम तजि निर्गुन नाम लखाए।
तब यहि घोष खेल बहु खेले ऊखल भुजा बँधाए।
सूरदास प्रभु यहै सूल जिय बहुरि न चरन दिखाए ॥४४४॥

मधुकर काके मीत भए ?
दिवस चारि की प्रीति सगाई सो लै अनत गए।
डहकत फिरत आपने स्वारथ पाखँड और ठये।
चांड़ै सरे चिन्हारी मेटी, करत हैं प्रीति न ये।
चितहि उचाटि मेलि गए रावल मन हरि हरिजु लये।
सूरदास प्रभु दूत-धरम तजि बिष के बीज बये ॥४४५॥

मधुकर, कान्ह कही नहिं होहीं।
कीधौं नई सखी सिखई है निज अनुराग बरोही।
सचि राखी कूबरी पीठि पै ये बातें चकचोही।
स्याम सुगाहक पाय, सखी री, छार दिखायो मोही।
नागरमनि जे सोभा-सागर जग जुवती हँसि मोही।
लियो रूप, दै ज्ञान ठगौरी, भलो ठग्यो ठग वोही।
है निर्गुन सरवरि कुबरी अब घटी करी हम जोही।
सूर सो नागरि जोग दीन जिन तिनहिं आज सब सोही ॥४४६॥

---

४४५. चांड़ै सरे = मन की हौस निकल जाने पर, अपनी इच्छा पूरी हो जाने पर। रावल = महल, राजभवन।

४४६. बरोही = बल मे। चकचोही = चुहल की। लियो रूप = रूप ले लिया, निराकार कर दिया; बदले में ठगकर ज्ञान दे दिया।

(३) कालरात्रि
(४) मुक्ति
(५) यादगार
(६) द्वादशिकी
(७) दाना-पानी
(८) विप्लव
(९) जलती निशानी
(१०) ग्रहचक्र
(११) कजरी
(१२) जयमाला
(१३) उत्कंठिता
(१४) लहर
(१५) विचित्रा (नाटक)
(१६) जयंती
(१७) आलमगीर
(१८) कर्णार्जुन

रहस्य-रोमांच

(१) ताज का रहस्य
(२) शैतान
(३) धन का मोह
(४) कोशलगढ़ का किसान
(५) पहाड़ी फूल
(६) अन्तिम परिणाम
(७) अद्भुत जाल
(८) मृत्यु का व्यापारी
(९) यौवनशिखा
(१०) विद्रोही
(११) छिपा खजाना
(१२) गर्विता
(१३) चेतावनी
(१४) देश के लिए
(१५) दोस्त
(१६) चाँदी की कुञ्जी
(१७) आदर्श युवक
(१८) हुल्लड़
(१९) शैतान डाक्टर
(२०) प्रतिशोध
(२१) अन्याय का अन्त
(२२) प्रोफ़ेसर चौधरी
(२३) वज्राघात
(२४) समय का फेर
(२५) डाक्टर कोठारी का लोभ
(२६) चीन का जादू
(२७) नीला चश्मा
(२८) हार
(२९) अफ़रीदी डाकू
(३०) ख़तरे की राह
(३१) मकड़ी का जाला
(३२) अदृश्य आदमी
(३३) साहस का पहाड़
(३४) अंधेरखाता
(३५) कंकन का चोर
(३६) अपूर्व सुन्दरी
(३७) लौह लेखनी
(३८) गुप-चुप
(३९) लाल लिफ़ाफ़ा
(४०) कल की डाक

कहानी-संग्रह

('क' विभाग)—विदेशी भाषाओं की चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('ख' विभाग)—लेखकों की अपनी चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('ग' विभाग)—विभिन्न विषयों पर चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('घ' विभाग)—भारतीय भाषाओं की चुनी हुई कहानियाँ—६ भाग

विज्ञान

(१) स्वास्थ्य और रोग
(२) जानवरों की दुनिया
(३) आकाश की कथा
(४) समुद्र की कथा
(५) खाद-विज्ञान
(६) मनुष्य की उत्पत्ति
(७) प्राकृतिक चिकित्सा
(८) विज्ञान का व्यावहारिक रूप
(९) प्रकृति की विचित्रतायें
(१०) वायु पर विजय
(११) विज्ञान के चमत्कार
(१२) विचित्र जगत्
(१३) आधुनिक आविष्कार

हिन्दी-साहित्य

अमर साहित्य

(१) वैष्णवपदावली
(२) मीरा के पद
(३) नीति-संग्रह
(४) हिन्दी की सूफी कविता
(५) प्रेममार्गी रसखान और घनानन्द
(६) सन्तों की वाणी
(७) सूरदास
(८) तुलसीदास
(९) कबीरदास
(१०) बिहारी
(११) पद्माकर
(१२) श्री भारतेन्दु

साहित्य-विवेचन-निबंध-संग्रह, इत्यादि

(१) हिन्दी-साहित्य में नूतन प्रवृत्तियाँ
(२) हिन्दी-कविता में नारी
(३) हिन्दी के उपन्यास
(४) हिन्दी में हास्य-रस
(५) हिन्दी के पत्र और पत्रकार ?
(६) हिन्दी का वीर-काव्य
(७) नवीन कविता, किधर
(८) व्रजभाषा की देन
(९) हिन्दी के निर्माता (द्वितीय भाग)
(१०) बालकृष्ण भट्ट
(११) बालमुकुन्द गुप्त
(१२) महावीरप्रसाद द्विवेदी
(१३) बाबू श्यामसुन्दरदास

धर्म

(१) गीता (शङ्करभाष्य)
(२) ,, (रामानुजभाष्य)
(३) ,, (मधुसूदनी टीका)
(४) ,, (शङ्करानन्दी टीका)
(५) ,, (केशव काश्मीरी की टीका)
(६) योगवाशिष्ठ (११ मुख्य आख्यान)

(७) सरल उपनिषद् (ईश, केन, कठ, मुंडक, प्रश्न, ऐतरेय, तैतिरीय, श्वेताश्वतर आदि) २ भाग
(८) पुराण (समस्त पुराणों के चुने हुए शिक्षाप्रद और मनोमोहक कथानक)
(९) महाभारत के निम्नाङ्कित अंश
क–(विदुरनीति)
ख–(सनक सुजातीय)
ग–(नारायणीय उपाख्यान)
घ–(श्रीकृष्ण के समस्त व्याख्यान)
ङ–(वन, शान्ति और अनुशासन-पर्व के आख्यान)
(१०) पातञ्जल योगदर्शन (व्यास भाष्य)
(११) तंत्र सर्वस्व
(१२) पौराणिक संतों के चरित्र
(१३) उत्तर-भारत के मध्यकालीन संत
(१४) दक्षिण-भारत के संत
(१५) आधुनिक संतों की जीवनी (श्री अरविन्द, रमण महर्षि, विवेकानन्द, उड़िया बाबा आदि
(१६) पतिव्रताओं और सतियों के चरित्र

ऐतिहासिक विचित्र कथा

(१) भारत का प्राचीन गौरव
(२) प्राचीन मिस्र का रहस्य
(३) प्राचीन ग्रीक की सभ्यता
(४) मृत्युलोक की झाँकी
(५) अमेरिका का स्वाधीनता-युद्ध
(६) फ़्रांस की राजक्रांति
(७) रोमनसाम्राज्य का पतन
(८) क्रांति की बिभीषिका
(९) रोम के महापुरुष
(१०) इत्सिंग का भारत-भ्रमण
(११) ध्रुव प्रदेश की खोज में
(१२) प्राचीन तिब्बत
(१३) सहारा की विचित्र बातें
(१४) मरहठों का उदय और अस्त
(१५) सिक्खों का उत्थान और पतन
(१६) भारत के पूर्वी उपनिवेश
(१७) मुग़लसाम्राज्य में भ्रमण
(१८) मुग़लों का दरबार
(१९) लखनऊ की शाहजादियाँ
(२०) विदेशी यात्रियों का भारत-वर्णन
(२१) नरभक्षकों के देश में—
(२२) पशुओं, मानवों और देवों में—

जीवन-चरित्र

(१) नेपोलियन बोनापार्ट
(२) लेनिन
(३) भारतीय राजनीति के स्तम्भ (१)
(४) तुर्की का पिता कमाल
(५) मेज़िनी—इटली का वीर
(६) सन-यात-सेन—चीन का नायक
(७) एब्राहिम लिंकन—अमेरिका का नेता